वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६४ अंक ८ अगस्त २०२६

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४
अंक ८

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

श्रावण, सम्वत् २०८३

अगस्त, २०२६

अनुक्रमणिका

* विभिन्न धर्म ईश्वर-प्राप्ति के विभिन्न पथ हैं : रामकृष्ण परमहंस देव ३४२
* युवकों के प्रति हमारा कर्तव्य (स्वामी ऋतानन्द) ३४५
* वैश्विक शान्ति और स्वामी विवेकानन्द (यासिका बरिहा) ३४८
* संघर्ष, बलिदान और प्रेरणा-पुरुष : भगवान बिरसा मुण्डा (रामकुमार सिंह) ३५३
* व्रज में श्रीमाँ सारदा (स्वामी ओजोमयानन्द) ३५५
* स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त आत्म-विकास के सूत्र (डॉ. कविता चौधरी) ३५९
* (बच्चों का आंगन) घर में शिक्षा (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) ३६१
* (युवा प्रांगण) स्वतन्त्रता के मौन नक्षत्र (स्वामी गुणदानन्द) ३६५
* भगवान के नाम-जप का विज्ञान (स्वामी त्रिभुवनदास जी महाराज) ३६७
* मानव स्वयं अपना भाग्य-निर्माता (अनन्या पाढ़ी) ३७२
* आत्मनिर्भर भारत : एक परिकल्पना (अशोक पाण्डेय) २७४
* गुप्त रेडियो की आवाज – उषा मेहता (श्रीमती मिताली सिंह) ३७६
* (भजन एवं कविता) * चल शिव के धाम काँवरिया (आनन्द तिवारी), * नमन करो उन वीरों को (डॉ. अनिल कुमार) ३६३, * मानव! प्रभु के गुण गाते न क्यों तुम (संत पथिक जी) ३७०, * यह देश हमारा भारत है (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ३७३, * रामकृष्ण वाणी अमर ज्योति (सूर्यनारायण झा) ३७५, * त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) ३७१

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ३४१
सम्पादकीय ३४३
पुरखों की थाती ३४९
रामगीता ३५०
श्रीरामकृष्ण-गीता ३६४
गीतातत्त्व-चिन्तन ३७७
साधुओं के पावन प्रसंग ३८०
समाचार और सूचनाएँ ३८३

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनीआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :

बैंक का नाम	:	**सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया**
अकाउण्ट का नाम	:	**रामकृष्ण मिशन, रायपुर**
शाखा का नाम	:	**विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.**
अकाउण्ट नम्बर	:	**1385116124**
IFSC	:	**CBIN0280804**

अगस्त माह के जयन्ती और त्यौहार

१०	**स्वामी रामकृष्णानन्द**
२८	**स्वामी निरञ्जनानन्द**
९,२३	**एकादशी**

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री रामराज प्रसाद और श्रीमती उषा प्रसाद की स्मृति में श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद, उ.प्र.	१०,००१/-
,, ,, ,,	६,००१/-
,, ,, ,,	११,००१/-
स्वामी दयापूर्णानन्द, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम,वाराणसी	२,०००/-

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सभी प्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फुलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुई हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कविताएँ छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर के शताब्दी वर्ष समारोह उत्सव के अन्तर्गत विद्यालय में एक फाइबरग्लास की मूर्ति का अनावरण किया गया, जिसमें एक युवा छेनी एवं हथौड़ी से स्वयं को तराश रहा है, यह मूर्ति स्वामी विवेकानन्द के कथन 'मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है' के विचारों को दिखाती है। उत्तर प्रदेश विधानसभा अध्यक्ष श्री सतीश महाना जी ने २७ अक्तूबर, २०२५ को इस मूर्ति का अनावरण किया।

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

श्रीरामकृष्ण के सार्वभौमिक मन्दिर निर्माण हेतु निवेदन

रामकृष्ण मिशन आश्रम,

मोराबादी, राँची - 834008, झारखण्ड

e-mail : ranchi.morabadi@rkmm.org, Web : www.rkmranchi.org

सेवा की एक शताब्दी पूर्ण होने की स्मृति में

प्रिय भक्त एवं शुभचिन्तक वृन्द !

सादर नमस्कार

आपको विदित है कि 1927 में स्थापित यह आश्रम, स्वामी विवेकानन्द के आदर्श 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' – अपनी मुक्ति और जगत् का कल्याण – से प्रेरित होकर लगभग 100 वर्षों से आध्यात्मिक, शैक्षिक, चिकित्सा, कृषि एवं मानव-सेवा कार्यों के द्वारा समाज की निरन्तर सेवा करता चला आ रहा है ।

हम लोग आश्रम-स्थापना की शताब्दी वर्ष 1927-2027 की ओर अग्रसर हो रहे हैं । हमारा प्राचीन मन्दिर जर्जर हो चुका है और बढ़ती हुई भक्तों एवं शुभचिन्तकों की संख्या की सेवा हेतु एक नवीन तथा वृहत् मंदिर की अत्यन्त आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है ।

नये मन्दिर की मुख्य विशेषताएँ –

* यह एक नवरत्न मन्दिर है ।
* इसकी प्रेरणा पूर्वी भारत की स्थापत्य परम्पराओं से ली गई है ।
* 55 फीट का विस्तृत, स्तम्भरहित प्रार्थना-कक्ष (आकार - 26.64m x 17m)।
* सहजता से चढ़ने वाली सीढ़ियों के साथ रैंप और लिफ्ट की सुविधा होगी ।
* मंदिर दो मंजिला होगा । बैठने की क्षमता 1070 (550+520) होगी ।
* दूसरी मंजिल में ध्यान, पूजा और आध्यात्मिक सेवा हेतु शान्त और अधिक बड़ा स्थान होगा ।
* पहली मंजिल में आध्यात्मिक शिक्षा और युवकों के सर्वांगीण विकास की गतिविधियाँ होंगी ।

अनुमानित व्यय – 10 करोड़ है

* दानराशि आयकर अधिनियम की धारा 80-जी के अन्तर्गत करमुक्त है।
* सभी दान कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किये जाएंगी और प्राप्ति-रसीद भेजी जाएगी।
* 10 हजार या उससे अधिक के दान पर आशीर्वाद-पत्र भी प्रेषित किया जाएगा।
* एक लाख या उससे अधिक के दान पर दाता या उसके परिजनों का नाम मंदिर के शिलालेख पर अंकित किया जाएगा, साथ ही उन्हें पावन स्मृति-चिह्न से सम्मानित किया जाएगा ।
* आश्रम के सेवाकार्यों को जानने के लिये हमारी वेबसाइट देखें –
* भारत के बाहर विदेशी दान-दाताओं से निवेदन है कि वे एफ सी आर ए बैंक-विवरण हमें ई-मेल करें ।

कृपया ध्यान दें – दाताओं से अनुरोध है कि वे आनलाइन दान भेजने के बाद हमारे ऑडिट विभाग हेतु हमें ई-मेल करें और उसमें दान-दाता का नाम, पूरा पता, दान का उद्देश्य, पैन नं., मोबाईल नं., अपना ईमेल आईडी लिखकर हमारे ईमेल —

ranchi.morabadi@rkmm.org पर भेजें।

हम इस महायज्ञ में सम्मिलित होने हेतु आपको आमन्त्रित करते हैं। धन्यवाद।

प्रभु की सेवा में आपका
स्वामी भवेशानन्द
सचिव

हमसे सम्पर्क करें
9835158707

यह बैंक-एकाउन्ट केवल भारतीय दान-दाताओं के लिए ही है ।
Account Name : Ramakrishna Mission Ashrama,
Account No. : 50200081665283
Bank Name : HDFC BANK , Morabadi, Ranchi
IFSC CODE HDFC0007443

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ अगस्त २०२६ अंक ८

स्वामी विवेकानन्द स्तोत्र

गुरोराशीर्वादाद् समनिजशक्तेरपि बलात्
प्रसादादाद्या वरुणदिशि संसत्परिगतान् ।
क्षणेन व्याख्यानैरकृत् परिमुग्धान्मनसि यो
विवेकानन्दोऽसौ जयति जयहेतुर्जनिभुवः ।।

– गुरु के आशीर्वाद से, अपनी अतुलनीय शक्ति के प्रभाव से और आद्याशक्ति भगवती की कृपा से समुद्र-पार अमेरिका की एक विशाल धर्मसभा में व्याख्यान देकर क्षण में ही समस्त विद्वज्जनों के मन को जिन्होंने विमुग्ध कर दिया था, अपनी जन्मभूमि भारत की विजय के कारणस्वरूप उन्हीं विवेकानन्द की जय हो !

ततः प्रत्यावृत्तौ ह्यभयमयमन्त्रान् प्रतिदिशं
चित्तालस्यान् संजागरयितुमना भारतजनान् ।
य उच्चार्योदात्तं व्यघटमदीषां भयचयं
विवेकानन्दोऽसौ जयति भयहृद्भारतभुवः ।।

– उसके बाद पाश्चात्य देश से वापस आकर तमोगुण से अभिभूत भारतीय लोगों के रजोगुण को उद्बुद्ध करने की इच्छा मन में रखकर जिन्होंने भारत की दिशाओं-दिशाओं में परिभ्रमण करके 'अभय मन्त्र' उदात्त कण्ठ से उच्चारण कर उनके समस्त भय को दूर कर दिया था, उन्हीं भारत-भूमि के भयहारी स्वामी विवेकानन्द की जय हो !

दिशन् सेवावृत्तिं परमहितहेतुं जनिमता
मनैषीद् यो निष्ठां दिशिदिशि च सेवाश्रमगणान् ।
सुसन्तानः श्रेयः प्रचयजननः सर्वजगतां
विवेकानन्दौऽसौ जयति तिमिरोत्पातपतनः ।।

– जीवों के परमहित साधक सेवा-कार्य का प्रचार करके जिन्होंने दिशाओं-दिशाओं में लोगों में निष्ठा जाग्रत की एवं अनेक सेवाश्रमों की स्थापना के द्वारा सेवाधर्म का प्रवर्तन और समस्त संसार के श्रेयोवर्धक कल्याणकार्य की अभिवृद्धि कर त्यागी शिष्यमंडली संगठित की, उन्हीं अज्ञानान्धकार के नाशक सूर्यमय स्वामी विवेकानन्द की जय हो !

विभिन्न धर्म ईश्वर-प्राप्ति के विभिन्न पथ हैं : रामकृष्ण परमहंस देव

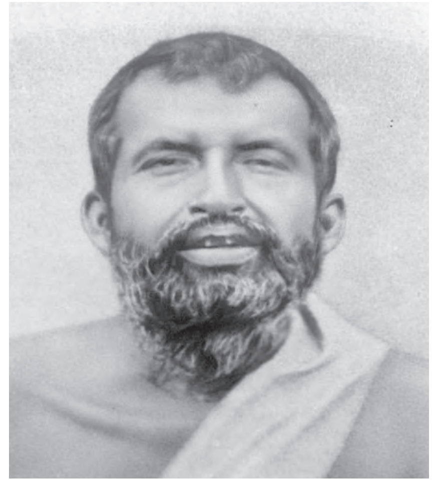

जिस प्रकार एक ही जल को कोई 'वारि' कहता है और कोई 'पानी', कोई 'वाटर' कहता है, तो कोई 'एक्वा', उसी प्रकार एक ही सच्चिदानन्द को देशभेद के अनुसार कोई 'हरि' कहता है, तो कोई 'अल्लाह', कोई 'गॉड' कहता है, तो कोई 'ब्रह्म'।

जिस प्रकार कुम्हार के यहाँ हण्डी, गमले, सुराही, सँकोरे आदि भिन्न-भिन्न वस्तुएँ होती हैं, परन्तु सभी एक ही मिट्टी से बनी होती हैं, उसी प्रकार ईश्वर एक होते हुए भी देश-कालादि के भेदानुसार भिन्न-भिन्न रूपों और भावों में प्रकट होते हैं।

जैसे एक ही शक्कर की मिठाई के अलग-अलग आकार बनाये जाते हैं, वैसे ही एक ही ईश्वर विभिन्न देश-काल में विभिन्न नाम-रूपों में पूजे जाते हैं।

सोने से नाना प्रकार के गहने बनाए जाते हैं। गहनों के नाम और आकार अलग-अलग होने पर भी वे सभी एक ही सोना हैं। इसी तरह एक ही ईश्वर भिन्न-भिन्न देशों में, भिन्न-भिन्न समय में, भिन्न-भिन्न नामों और रूपों में पूजे जाते हैं। साधक की भावना के अनुसार उनकी विभिन्न भावों से पूजा हो सकती है – कोई पिता या माता के रूप में, कोई सखा या प्रेमास्पद के रूप में, कोई अन्तरात्मा प्राणधन के रूप में, तो कोई अपनी सन्तान के रूप में उनकी आराधना करता है। परन्तु इन सभी भावों के भीतर से उस एक ही ईश्वर की पूजा होती है।

एक बार बर्दवान के महाराजा की सभा में पण्डितों के बीच आपस में तर्क-विचार छिड़ गया – शिव बड़े हैं या विष्णु? कोई कहता शिव बड़े हैं, तो कोई कहता विष्णु बड़े हैं। जब विवाद बढ़कर झगड़े में परिणत हो गया तो, एक विद्वान पण्डित से निर्णय पूछा गया। उन पण्डित ने कहा, ''महाशय, मैंने न तो शिव को देखा है, न विष्णु को। भला मैं कैसे कहूँ कि कौन बड़ा है!'' एक देवता की दूसरे देवता के साथ इस प्रकार की तुलना नहीं करनी चाहिए। यदि तुम्हें किसी एक देवता के दर्शन हो जाएँ, तो तुम देखोगे कि सभी देवता उस एक ही ब्रह्म के प्रकाश हैं।

विभिन्न धर्म ईश्वर-प्राप्ति के विभिन्न पथ हैं।

बड़े तालाब में बहुत से घाट होते हैं। किसी भी घाट से उतरने पर एक ही पानी मिलता है। इसलिए 'मेरा घाट अच्छा है, तुम्हारा घाट नहीं' इस तरह परस्पर झगड़ना निरर्थक है। इसी प्रकार, सच्चिदानन्द-सरोवर में भी अनेक घाट हैं। सभी धर्म मानो एक-एक घाट हैं। यथार्थ में व्याकुल होकर लगन के साथ इनमें किसी भी एक घाट के सहारे आगे बढ़ो, तुम अवश्य ही सच्चिदानन्द सरोवर में उतर सकोगे। ऐसा कभी न कहो कि मेरा धर्म श्रेष्ठ है।

ईश्वर के अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं। जिस नाम और जिस रूप में तुम्हारी रुचि हो, उसी नाम से और उसी रूप में तुम उन्हें पुकारो, तुम्हें उनके दर्शन मिलेंगे।

जैसे कालीघाट के कालीमन्दिर में जाने के लिये बहुत से रास्ते हैं, वैसे ही भगवान के घर जाने के लिए भी बहुत से रास्ते हैं। हर एक धर्म एक-एक मार्ग है।

जिस प्रकार छत पर चढ़ने के लिये निसैनी, बाँस, रस्सी, सीढ़ी आदि अनेक उपाय हैं, उसी प्रकार ईश्वर के निकट पहुँचने के लिए भी अनेक उपाय हैं – प्रत्येक धर्म ही एक-एक उपाय बताता है।

गैसबत्ती की रोशनी नाना स्थानों में नाना प्रकार से प्रकाशमान होती है, परन्तु आती है एक ही आधार से। इसी तरह विभिन्न समय में विभिन्न देशों और विभिन्न जातियों के धर्मगुरु उस एक ही परमेश्वर से आते हैं और ईश्वरीय आलोक से सब को प्रकाशित करते हैं।

सभी सियारों की पुकार एक-सी होती है। सभी ज्ञानियों का उपदेश एक ही होता है।

सम्पादकीय

तुम सब कुछ कर सकते हो : स्वामी विवेकानन्द

भारत के अमर सपूत, भारतीय संस्कृति के उन्नायक, युगनायक स्वामी विवेकानन्द जी अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस की महासमाधि के बाद भारत-भ्रमण की सुदीर्घ यात्रा हेतु कोलकाता से प्रस्थान करते हैं। वहाँ से उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम की यात्रा करते हैं। उनके जीवन में अनेक सामाजिक और आध्यात्मिक अनुभव होते हैं, जो उनके हृदय पर एक चिह्न छोड़ते हैं और उन्हें समाज के प्रति और विशेष रूप से अपने देशवासियों के प्रति कुछ करने के लिए विवश करते हैं। अपने भ्रमण-काल में स्वामीजी ने देशवासियों की अतिशय दुर्दशा को देखा। देशवासियों को अशिक्षा, अस्वास्थ्य, हताशा-निराशा और विभिन्न कुरीतियों-कुप्रथाओं से ग्रस्त और दुखित देखा। सर्वोपरि, उनमें आत्मविश्वास की कमी पाया। वे लोग कुछ करने में अपने को असक्षम अनुभव करते थे, यहाँ तक कि विचारों से भी संकीर्ण हो गए थे।

भारतवासियों की ऐसी मनोदशा, दुर्दशा देखकर स्वामीजी अत्यन्त दुखित हो जाते हैं। कन्याकुमारी के शिलातल पर ध्यान कर स्वामीजी ने इसके निदान का सूत्र प्राप्त किया। उसके बाद देशवासियों में सर्वप्रथम वे आत्मविश्वास जागृत करने का मन्त्र फूँकते हैं। उनमें आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा और आत्मगौरव के जागरण का सिंहनाद करते हैं। अपने लाहौर के 'हिन्दू धर्म के सामान्य आधार' नामक व्याख्यान में स्वामीजी कहते हैं – "जो व्यक्ति दिन-रात अपने को दीन-हीन या अयोग्य समझे हुये बैठा रहेगा, उसके द्वारा कुछ भी नहीं हो सकता। वास्तव में यदि दिन-रात वह अपने को दीन-हीन, नीच एवं 'कुछ नहीं' समझता है, तो वह 'कुछ नहीं' ही बन जाता है।"[१]

वर्षों की परतन्त्रता, मुगलों और अँग्रेजों के अत्याचार एवं उत्पीड़न से देशवासी अपने आत्मसम्मान और आत्मशक्ति को विस्मृत कर दीन-हीन-निरीह हो गये थे और यह मान चुके थे अब उनसे कुछ नहीं होगा, उनकी सन्तानें इन शासकों की दासता करने के लिये ही हैं। किन्तु इसके घोर काले बादलों में तेज बिजली सदृश और घनान्धकार में प्रखर सूर्य सदृश ज्ञान और आत्मविश्वास का प्रकाश लिये युगनायक, युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द अवतरित हुये। वे ऐसी मनोदशाग्रस्त भारतीय समाज पर बिजली के समान टूट पड़े। देशवासियों में आत्मविश्वास और आत्मशक्ति को स्फुरित करते हुये वे लाहौर की सभा में कहते हैं – "यदि तुम कहो कि 'मेरे अन्दर शक्ति है' तो तुममें शक्ति जाग उठेगी। यदि तुम सोचो कि 'मैं कुछ नहीं हूँ' दिनरात ही ऐसा सोचा करो, तो सचमुच ही 'कुछ नहीं' हो जाओगे।

तुम्हें यह महान तत्त्व सदा स्मरण रखना चाहिये कि – **''हम तो उसी सर्वशक्तिमान परम पिता की सन्तान हैं, उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ हैं। भला हम 'कुछ नहीं' क्योंकर हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं और मनुष्य को सब कुछ करना होगा। हमारे पूर्वजों में ऐसा ही दृढ़ आत्मविश्वास था और इसी आत्मविश्वास रूप प्रेरणाशक्ति ने उन्हें सभ्यता की उच्च से उच्चतर सीढ़ी पर चढ़ाया था।''**[२]

मनोविज्ञान के पारखी स्वामी विवेकानन्द बचपन से ही बच्चों को इस अद्भुत शक्ति से परिचित करा देना चाहते थे। वे चाहते थे कि बच्चों को उनकी क्षमता से जितना शीघ्र हो सके, अवगत करा दिया जाय। वे कहते हैं – ''अतएव भाइयो ! तुम अपनी सन्तानों को उनके जन्म-काल से ही इस महान जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्त्व की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दो।''[३]

अत: सदैव स्वामीजी की वाणी को याद करते हुये अपने भीतर की अनन्त शक्ति का चिन्तन करें, परमपिता की सन्तान होने का चिन्तन करें, अपने भीतर दुर्दमनीय अनन्त शक्ति का चिन्तन करें। आप परम शक्तिशाली हैं, सब कुछ और सभी महान कार्य कर सकते हैं। किसी सन्त-कवि की ये पंक्तियाँ आपकी शक्ति को इंगित करती हैं –

तुम वीर योद्धा हो, राष्ट्र के सपूत हो।
नि:स्वार्थी लोकसेवक, जगत के भूप हो।।
राष्ट्र की आन और विश्व की शान हो।
इस भारत में जन्में मानव महान हो।। OOO

सन्दर्भ-ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य, भाग ५/२६७ **२.** वही, ५/२६७ **३.** वही, ५/२६८.

क्या भारत मर जायेगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायेगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायेगा, धर्मों के प्रति सारी मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का भी लोप हो जायेगा। और उसके साथ में कामरूपी देव और विलासितारूपी देवी राज्य करेगी। धन उनका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वन्द्विता एही उनकी पूजा-पद्धति होगी और मानवात्मा उनकी बलि-सामग्री हो जायेगी। ऐसी दुर्घटना कभी हो नहीं सकती। क्रियाशक्ति की अपेक्षा सहनशक्ति कई गुना बड़ी होती है। प्रेम का बल घृणा के बल की अपेक्षा अनन्त गुना अधिक है।

यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हजारों नहीं, लाखों मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास-मद में चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप में, इन्द्रिय-परतन्त्रता में, संसार के शाप में डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि में हजारों ऐसे भी होंगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो आवश्यकता पड़ने पर फलाफल का विचार किये बिना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायेंगे।

भारतीय जीवन-रचना का यही प्रतिपाद्य विषय है, उसके अनन्त संगीत का यही दायित्व है, उसके अस्तित्व का यही मेरुदण्ड है, उसके जीवन की यही आधारशिला है, उसके अस्तित्व का एकमात्र हेतु है, मानव जाति का आध्यात्मीकरण। अपने इस लम्बे जीवन-प्रवाह में भारत अपने इस मार्ग से कभी भी विचलित नहीं हुआ, चाहे तातारों का शासन रहा हो और चाहे तुर्कों का, चाहे मुगलों ने राज्य किया हो और चाहे अंग्रेजों ने।

भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं – त्याग और सेवा। आप इसकी इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए और शेष सब अपने आप ठीक हो जायेगा। इस देश में आध्यात्मिकता का झंडा कितना ही ऊँचा क्यों न किया जाये, वह पर्याप्त नहीं होता। केवल इसी में भारत का उद्धार है।

– स्वामी विवेकानन्द

युवकों के प्रति हमारा कर्तव्य

स्वामी ऋतानन्द

रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ

भारतवर्ष में युवकों की संख्या अत्यधिक मात्रा में है। जीवन का महत्त्वपूर्ण समय किशोरावस्था और युवावस्था है। जीवन-निर्माण, चरित्र-निर्माण और भविष्य-निर्माण का यही सर्वश्रेष्ठ समय है। इसलिए सभी संगठनों में उन लोगों की स्वेच्छा से सहभागिता दृष्टिगोचर होती है। जैसे राजनीतिक दलों का युवा-संगठन, कॉलेज-विश्वविद्यालय का युवा-संघ और कल-कारखानों के संगठन में युवाओं की सहभागिता व्यापक है और सम्मानित है। श्रीरामकृष्ण देव इस सत्यता से अवगत थे। बच्चों-युवाओं के प्रति उनकी विशेष दृष्टि थी। किसी का भाव नष्ट न करते हुए प्रत्येक के जीवन-गठन में उनकी अद्‌भुत दूर-दृष्टि और आकर्षण की क्षमता थी। उनके सोलह त्यागी शिष्यों में एक को छोड़कर सभी किशोर या युवा थे। मिट्टी का लोंदा जैसे उन लोगों के जीवन को, एक-एक को विशेष रूप से उन्होंने गढ़ा था। रामकृष्ण-भावधारा के प्रचार-प्रसार में उन लोगों का जीवन श्रीरामकृष्ण की महिमा का आदर्श और प्रेरणा है। उन लोगों के जीवन के द्वारा अनन्त भावमय श्रीरामकृष्ण की महिमा ही प्रकाशित होकर एक विशाल बलशाली शक्ति में परिणत हुई है, हो रही है और होगी।

सम्प्रति प्राय: सभी आश्रमों या संगठनों की एक ही बड़ी समस्या है – युवकों का आकर्षित न होना। इसे हम ऐसा कह सकते हैं कि हम लोग यानी आश्रम या संगठन युवकों को आकर्षित नहीं कर पा रहे हैं। तो हमें क्या करना चाहिए? यह जानना आवश्यक है। तभी तो समझकर कर्तव्य-पालन हेतु क्रमश: अग्रसर हुआ जायेगा। बहुत से युवा सम्मेलनों में इस विषय पर बार-बार चर्चा होती है, किन्तु क्रियान्वयन का प्रयास बहुत कम हुआ है। जो लोग कुछ करने में सक्षम हो रहे हैं, वे इस समस्या से कुछ मुक्त हो रहे हैं। बहुत संक्षेप में स्वामीजी ने कहा है – 'यदि पर्वत मोहम्मद के पास न जाये, तो मोहम्मद को ही पर्वत के पास जाना होगा, इतने दिनों तक स्वामीजी की इस वाणी का अर्थ जनता के समक्ष भावादर्श को ले जाने का संकेत ही समझा गया है। इतने आश्रमों और संगठनों के निर्माण का कारण यही है।

अभी जो लोग आश्रम-संचालन कर रहे हैं, उनके लिये क्या करणीय है, उनका क्या कर्त्तव्य है, इस सम्बन्ध में सम्भावित कई उपाय उल्लेखनीय हैं। आश्रम या संस्था-निर्माण का उद्देश्य है – रामकृष्ण-भावधारा से मानव-जीवन को सार्थक कर ऊँचा उठाना। देखा जाता है कि वहाँ कुछ प्रौढ़, वृद्ध, नर-नारी सब प्रकार के लोग आ रहे हैं, किन्तु मुख्य समस्या युवाओं की सहभागिता की है।

युवकों को तीन भाग में विभक्त कर सकते हैं – पहला - छात्र-जीवन, दूसरा – नौकरी या जीविकोपार्जन हेतु तत्पर एवं तीसरा – पहला और दूसरा जो इन दोनों का अतिक्रमण कर जीविकोपार्जन में संलग्न हुये हैं।

तीनों स्तर के युवाओं की आवश्यकताएँ भिन्न प्रकार की हैं। उनके उन प्रयोजनों को पूर्ण करने में आश्रम या संस्था द्वारा अल्पतम प्रयास करने पर भी युवक अपनी आवश्यकताओं की अल्पपूर्ति होने पर आश्रम की ओर उन्मुख होंगे, आश्रम में आयेंगे। शास्त्रों में कहा गया है – स्वार्थ सिद्ध न होने पर एक पागल भी मधु-संग्रह हेतु अग्रसर नहीं होता।

स्वामीजी द्वारा कथित 'पर्वत' स्थावर जैसा कुछ नहीं है, वह जन-समुदाय है और वह सम्भावनाओं से परिपूर्ण है। उसी सम्भावना का क्रम-विकास करते-करते मोहम्मद का (संगठन का) पर्वत (मनुष्य) के पास जाने का निर्देश है। व्यक्ति के स्तर के अनुसार अवश्य ही प्रयास करणीय है।

पहले स्तर के छात्र-छात्राओं के लिये कर्तव्य

(क) शिक्षा-ग्रहण करने में असमर्थ छात्रों को चयनित करना है। उनकी समस्याओं को जानना और सुनना है। पुस्तक आदि देने, पुस्तकालय, कोचिंग सेन्टर चलाने से कुछ लड़के-लड़कियाँ आश्रम में आने लगे हैं, ऐसा देखा गया है। स्कूल या सरकार छात्रों को जो दे रही है, उसके अतिरिक्त आवश्यकताओं को पूर्ण करना ही संस्था का

कर्तव्य है। संगीत, चित्रकारी इत्यादि कोमल भावों के उन्मेष हेतु किसी शिक्षक या शिक्षिका की नियुक्ति कर युवाओं को किसी उच्चतर सांस्कृतिक एवं रचनात्मक कार्य में प्रवृत्त किया जा सकता है।

(ख) राष्ट्रीय युवा दिवस आदि के उपलक्ष्य में युवा-सम्मेलन का आयोजन करना चाहिये। उसमें निबन्ध-लेखन, प्रश्नोत्तरी, पाठ-आवृत्ति, संगीत, भाषण आदि प्रतियोगिताओं में युवाओं का भाग लेना उनके लिए लाभकर है। रचनात्मक मनोभाव का उन्मेष और आत्मविश्वास में वृद्धि हेतु यह आवश्यक कदम है। लघुनाटक खेलने से भी अच्छा लाभ मिला है।

(ग) स्कूल-कॉलेज से सम्पर्क रखना चाहिए और किसी शनिवार को वहाँ छात्रों के लिए स्वामीजी विषयक किसी कार्यक्रम का आयोजन करना चाहिए।

दूसरे स्तर के युवा-वर्ग के प्रति कर्तव्य

(क) जो छात्र-छात्रा जीविकोपार्जन की खोज में व्यग्र हैं, वे आश्रम क्यों आयेंगे? यदि उनकी समस्याओं के समाधान में कोई सहायता न मिले, तो वे क्यों आएंगे?

विभिन्न प्रकार की नौकरियों में सहायक समाचारपत्र-पत्रिकायें, कम्प्यूटर और कुछ पुस्तकें आश्रम या संस्था के पुस्तकालय की मेज पर रखनी चाहिए। उसे युवकों के निर्विघ्न रूप से पढ़ने के लिये उपलब्ध कराने पर छात्रों के साथ सम्बन्ध होगा। तीसरे स्तर के पुराने युवक-युवतियों को इस स्तर के युवकों का मार्ग-दर्शन करना होगा या परामर्श (काउंसलिंग) करना होगा। युवतियों को नर्सिंग या टेलरिंग-प्रशिक्षण में उत्साहित करना होगा और उनकी व्यवस्था करनी होगी।

(ख) जो युवा नौकरी न खोजकर कोई प्रशिक्षण-कौशल विकास की शिक्षा लेना चाहता है, अर्थात् हस्त-कौशल सीखकर आत्मनिर्भर होना चाहता है, तो उसके लिए रामकृष्ण मिशन में तीन केन्द्र हैं – नरेन्द्रपुर, सारदापीठ एवं बेलघरिया। इन केन्द्रों के कारीगरी-प्रशिक्षण विभाग के साथ सम्बन्ध करा देना, आश्रम-संचालकों का कर्तव्य है। प्रत्येक केन्द्र में विभिन्न व्यवसाय में संलग्न होने के कारण बहुत से कोर्स-पाठ्यक्रम हैं। उन सब आश्रमों की पुरानी पत्रिकाएं आश्रम-पुस्तकालय के टेबुल पर छात्र-छात्राओं के उपयोग हेतु रखने से छात्रों को बहुत लाभ होगा। आवश्यकता का बोध होने पर प्रशिक्षण के इच्छुक प्रतिनिधियों को साथ में ले जाकर उपर्युक्त तीनों आश्रमों का परिदर्शन कराना चाहिए।

तीसरे स्तर के युवाओं हेतु कर्तव्य

(क) तीसरे स्तर के युवक हैं, जो लोग अभी जीविकार्जन में संलग्न हुए हैं या नौकरी पाये हैं। वे लोग आश्रम में आकर दूसरे स्तर के युवकों से मिलकर उनका मार्गदर्शन करें। वे यदि आश्रम में आकर रहें, तो उनके लिये आश्रम का कर्तव्य यह है कि उन्हें मार्गदर्शन करें कि – जीविकोपार्जन ही जीवन की सफलता का सब कुछ नहीं है, आत्मविकास और जगत्-कल्याण में स्वयं को संलग्न रखकर जीवन का उद्देश्य ईश्वर-दर्शन या अपनी अन्तर्निहित अनन्त शक्ति और सम्भावना का विकास करना होगा। इस सम्बन्ध में उन्हें सजग करना एवं उनके समय, सुयोग, सुविधानुसार आश्रम या संस्था के कार्यक्रमों में उन्हें भाग लेने को प्रेरित करना होगा।

(ख) तीसरे स्तर के सदस्य छात्र-जीवन पूर्ण कर आर्थिक दृष्टि से चिन्तामुक्त हैं। मुक्त अर्थात् ये लोग ही पहले और दूसरे स्तर के युवकों के साथ खड़े हो सकते हैं। आश्रम को, संस्था को स्वाध्याय, पाठ-चक्र, उत्सव आदि में इन्हें भाग लेने या नेतृत्व करने का कार्य देना होगा। आश्रम के वरिष्ठ सदस्यों को अभिभावक के रूप में रहकर धीरे-धीरे पूर्व सदस्यों पर दायित्व का भार सौंपने का मनोभाव बनाना

होगा। स्वामीजी ने स्मरण दिला दिया है – ''हम लोगों ने दायित्व का विभाजन करना नहीं सीखा है।'' संगठन का गति-प्रवाह इस गुण पर विशेष रूप से निर्भर करता है।

आश्रम-संचालकों एवं सम्बन्धित सभी लोगों के लिये कुछ सामान्य कर्त्तव्य –

(क) आसपास के लोगों से सम्बन्ध रखना। मिलना-जुलना, बातचीत करना।

(ख) समस्या को जान-सुनकर साधारण होने पर भी उसके समाधान हेतु छोटा-सा भी प्रयास करना।

(ग) आसपास के तीर्थ-भ्रमण में जाना। पहले से व्यवस्था करने पर बहुत से लोग जाना चाहेंगे। उसमें किसी भी आयु के इच्छुक व्यक्ति को संयुक्त किया जा सकता है।

(घ) कार्यक्रम में पुरस्कार-वितरण में रामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य की कम मूल्य की पुस्तक प्रदान करना।

(ङ) दायित्व बाँट देना और उन पर दृष्टि रखना।

(च) भूल-चूक सुधार कर प्रशंसा करना। गुणग्राही होना। यह गुण दूसरों को आकर्षित करता है।

(छ) भूल सुधारने के लिये बहुत डाँट-फटकार न कर हँसते हुए मधुर वाणी में मार्गदर्शन करने से आत्मसंयम, प्रेम इत्यादि गुणों में वृद्धि होती है और दूसरों में प्रेम का उदय होता है।

(ज) ठाकुर के प्रसाद के रूप में थोड़ा-सा इलायचीदाना या बतासा भी दर्शनार्थियों को देने का प्रयत्न करना चाहिए। ठाकुर, माँ, स्वामीजी की छोटी-सी पुस्तक भी दी जा सकती है।

(झ) युवकों के आने पर उनके साथ थोड़ी-सी बातें करना, उनका समाचार पूछना चाहिये। कभी रास्ते में मिलने पर समय होने पर एक-दो बातें करनी चाहिये, समय न रहने पर परिचित जैसा हँसते हुए चले जाना भी भविष्य में काम आता है।

(ञ) किसी की निन्दा करना या किसी को छोटा करके देखने के विचार का पूर्णत: त्याग कर देना चाहिए।

स्वभावत: भारतवर्ष के लोग धार्मिक होते हैं। मन्दिर-मस्जिद या गिरिजाघर के पास से जाते समय देखा जाता है कि बहुत-से लोग थोड़ी देर के लिये ही क्यों न हो, वे लोग उधर देखते हैं, कोई थोड़ी देर वहाँ रुकते हैं, कोई कपाल में हाथ स्पर्श कर प्रणाम करते हैं। श्रीरामकृष्ण आश्रम या संस्था का निर्माण वहाँ प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों से परिचित कराने के उद्देश्य से किया जाता है। अब युवकों को आश्रम में लाने के लिये हम लोगों को ही प्रयास करना होगा। उसे ही आश्रममुखी होना कहते हैं। बाद में वे लोग ही कार्यक्रम में योगदान करते हैं। इतना ही हम लोगों का कर्त्तव्य है। इसे भी सेवा-भावना से करना चाहिए। OOO

तुमने जगत् पर सम्मोहन का जो पर्दा डाल रखा है, उसे हटा दो। मनुष्य को दुर्बल न सोचो, उसे दुर्बल न कहो। समझ लो कि एक दुर्बलता शब्द से ही सब पापों और सम्पूर्ण अशुभ कर्मों का निर्देश हो जाता है। सारे दोषपूर्ण कार्यों की मूल प्रेरक दुर्बलता ही है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य सभी स्वार्थों में प्रवृत्त होता है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, दुर्बलता के कारण ही मनुष्य अपना सच्चा स्वरूप प्रकाशित नहीं कर सकता। सब लोग जानें कि वे क्या हैं? दिन-रात वे अपने स्वरूप सोऽहम् का जप करें। माता के स्तनपान के साथ सोऽहम् (मैं वही हूँ), इस ओजमयी वाणी का पान करें।

धर्म और ईश्वर कहने से अनन्त शक्ति और अनन्त वीर्य समझा जाता है। दुर्बलता और दासत्व का त्याग करो।

– स्वामी विवेकानन्द

वैश्विक शान्ति और स्वामी विवेकानन्द

यासिका बरिहा

शा. नागार्जुन विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर

आदरणीय अध्यक्ष महोदय, सुविज्ञ निर्णायक गण एवं श्रोतागण ! आप सभी को मेरा सादर नमस्कार। जब शान्ति को समझौते का नाम दे दिया गया और मौन को सद्गुण समझ लिया गया। तब इतिहास ने चुपचाप प्रश्न किया, क्या यही मानवता की पराकाष्ठा है? तब न प्रभुत्व ने उत्तर दिया, न शस्त्रों ने उत्तर दिया, तब उत्तर वहाँ से मिला, उठो। जहाँ से विवेक जागा, वह स्वर स्वामी विवेकानन्द कहलाया।

मित्रो ! जब विश्व सभ्यता भौतिक प्रगति के शिखर पर पहुँचकर भी मानसिक अशान्ति, वैचारिक संघर्ष और नैतिक रिक्तता से घिर जाती है, तब यह प्रश्न अपरिहार्य हो जाता है कि विश्व-शान्ति का वास्तविक मार्ग क्या है और इस प्रश्न का उत्तर किसी सिद्धान्त या स्रोत में नहीं, बल्कि उस दार्शनिक दृष्टि में निहित है, जिसे स्वामी विवेकानन्द ने मानवता के समक्ष प्रस्तुत किया।

१२ जनवरी, १८६३ को, कोलकाता में पिता विश्वनाथ दत्त एवं माता भुवनेश्वरी देवी के घर एक साधारण परिवार में नरेन्द्र दत्त का जन्म हुआ, लेकिन उनके विचार इतने प्रखर थे कि आज भी हार्वर्ड से लेकर टोकियो तक उनका अध्ययन किया जाता है। उनका स्पष्ट संदेश था, सभी मनुष्यों में एक ही चेतना निवास करती है। जब यह ज्ञान गहरा होता है, तो 'मैं' और 'दूसरे' का भेद मिट जाता है। उनके लिए शान्ति किसी सन्धि का परिणाम नहीं थी, बल्कि चेतना की अवस्था थी।

११ सितम्बर, १८९३ में शिकागो के विश्वधर्म सम्मेलन में दिया गया उनका ऐतिहासिक भाषण इसी वैश्विक शान्ति, वैश्विक परिवार का संदेश था। तब स्वामीजी की आयु मात्र ३० वर्ष थी।

३० वर्ष का ज्योतिपुंज था,
ज्ञान-पुष्प का सुलभ कुंज था।
मस्तक पर अरुणिम वह रेखा।
चकित रह गया जिसने देखा।।
शब्द-सुदर्शनधारी था वह।
देवदूत अवतारी था वह।

अपने भाषण के प्रारम्भ में स्वामीजी ने मात्र पाँच शब्द कहे। उन्हीं पाँच शब्दों ने आगामी ५०० वर्षों के लिये, पश्चिम की धरती पर सनातन सभ्यता का ध्वज गाड़ दिया। वे पाँच शब्द सुनने वालों के हृदय में ऐसे गड़े कि ७००० लोग खड़े होकर मन्त्रमुग्ध होकर तालियाँ बजाने लगे। वे पाँच शब्द सम्पूर्ण विश्व के लिये विश्वबन्धुत्व का संदेश बनकर गूँज उठे और आज तक गूँज रहे हैं।

शिकागो की धर्म-सभा में स्वामीजी के पहले पाँच शब्द थे – सिस्टर एंड ब्रदर्स ऑफ अमेरिका (अमेरिका के बहनों और भाइयों)। ये पाँच शब्द इतने अविस्मरणीय, इतने मर्मस्पर्शी इसलिये हो गए, क्योंकि ये शब्द किसी व्यक्ति के मुख से नहीं, बल्कि हमारी मूल संस्कृति से उपजे थे –

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

अर्थात् यह मेरा है, यह पराया है, ऐसी सोच छोटे मन वाले लोगों की होती है, जबकि उदार चरित्र वालों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही उनका परिवार है।

मित्रो! उनकी इस विचार-क्रान्ति के पीछे गहन आध्यात्मिक आधार थे रामकृष्ण परमहंस। यदि स्वामी विवेकानन्द विश्व के सामने भारत की आध्यात्मिक आवाज थे, तो रामकृष्ण उस आवाज की आत्मिक जड़ थे।

आइए! अब वैश्विक परिदृश्य पर दृष्टि डालें कि क्या हम स्वामी विवेकानन्द के शान्ति के मार्ग पर चल रहे हैं या युद्ध की विभीषिका में जा रहे हैं?

इतिहास के दो युद्ध प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध मानव सभ्यता की सबसे बड़ी विडम्बनाएँ रही हैं। वर्तमान में यदि हम एक ओर यूक्रेन के युद्ध, दूसरी ओर अमेरिका की स्थिति या दक्षिण एशियाई देशों में पनप रहे तनावपूर्ण स्थितियों पर दृष्टि डालते हैं, तो हमें लगता है कि जिस अमेरिका का 'शिकागो' स्वामी विवेकानन्द के कारण शान्ति की ज्योति के रूप में जाना जाता है, आज वही अमेरिका देश वियतनाम पर हमले कर रहा है, वियतनाम की भूमि को हड़पने के लिये व्यग्र हो रहा है।

इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने पहले ही कह दिया था कि विश्व की पताका पर लिख दो – 'युद्ध नहीं' शान्ति। परन्तु ये शब्द आज कहीं न कहीं हम जीवन से छोड़ रहे हैं और युद्ध की ओर बढ़ रहे हैं, जबकि युद्ध कभी भी, किसी भी सभ्यता का सारांश नहीं हो सकता। मानवता के हित के लिये शान्ति ही एकमात्र उपाय हो सकता है। इसी विवेकानन्द के संदेश से गाँधी पैदा होते हैं। इसी विवेकानन्द के संदेश से मार्टिन लूथर किंग जूनियर पैदा होते हैं, इसी विवेकानन्द के संदेश से दलाई लामा पैदा होते हैं, इसी विवेकानन्द के संदेश से आन सांग सू की पैदा होते हैं और पूरे विश्व में हिंसा को छोड़कर शान्ति के मार्ग से नया सूर्य उदित करते हैं। ○○○

(रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में प्रदत्त व्याख्यान)

पुरखों की थाती

भोजनान्ते च किं पेयं जयन्तः कस्य वै सुतः।
कथं विष्णुपदं प्रोक्तं तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ।।९०८।।

– भोजन के अन्त में क्या पीना चाहिये? – तक्र (मट्ठा)। जयन्त किसका पुत्र है? – इन्द्र का। विष्णु का पद कैसा है? – दुर्लभ है।

भोजनान्ते पिबेत्तक्रं दिनान्ते च पिबेत्पयः ।
निशान्ते च पिबेत्वारि किं वैद्येन प्रयोजनम् ।।९०९।।

– यदि कोई भोजन के अन्त में मट्ठा पीये, दिन के अन्त (रात) में दूध पीये और रात के अन्त (प्रात:काल) पानी पीये, तो उसे वैद्य की भला क्या आवश्यकता?

मणिना वलयं वलयेन मणिः
मणिना वलयेन विभाति करः ।
पयसा कमलं कमलेन पयः
पयसा कमलेन विभाति सरः ।।
शशिना च निशा निशया च शशिः
शशिना निशया च विभाति नभः ।
कविना च विभुः विभुना च कविः
कविना विभुना च विभाति सभा ।।९१०।।

– मणि से कंगन तथा कंगन से मणि शोभित होता है और कंगन तथा मणि दोनों से हाथ सुशोभित होता है। जल से कमल तथा कमल से जल शोभित होता है और जल तथा कमल दोनों से तालाब सुशोभित होता है। चन्द्रमा से रात तथा रात से चन्द्रमा शोभित होता है और चन्द्रमा तथा रात दोनों से आकाश सुशोभित होता है। कवि से राजा तथा राजा से कवि शोभित होता है और राजा तथा कवि दोनों से राजसभा सुशोभित होती है।

देखने में आता है, जो आरम्भ में साधन-भजन, ध्यान-जप आदि करते हैं, जितना ही मन को इष्ट में समाहित या एकाग्र करने की चेष्टा करते हैं, उतना ही मन टेढ़ा चलता है, दुनियाभर के गन्दे, असम्बद्ध विषयों में भटकना आरम्भ कर देता है। यहाँ तक कि मन में आता है कि ऐसी बला तो पहले कभी नहीं थी, तब तो जो सोचता था, मन को ठीक स्थिर करके सोच सकता था, अब ऐसा क्यों हो गया? इसका मतलब यह है कि जिन सब की ओर मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति थी, उन बाह्य विषयों में ही मैं उसे लगाता था। अतः उसके साथ कोई द्वन्द्व नहीं था। ज्योंही सदसत् विचार करके, उसे असार बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करने और वश में लाने का प्रयास किया कि वह विद्रोही हो उठा। नदी को बाँधने का प्रयत्न करने पर उसका वेग सौगुना बढ़ जाता है। पर उसके उसी वेग को, उसी शक्ति को यदि अभीष्ट कार्य में लगाया जाये, तो हजार गुनी फलप्राप्ति होती है।

– स्वामी विरजानन्द जी महाराज

रामगीता (७/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

एक बार प्रभु सुख आसीना।
लछिमन बचन कहे छलहीना।।
सुर नर मुनि सचराचर साईं।
मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं।।
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।
सब तजि करौं चरन रज सेवा।।
कहहु ग्यान बिराग अरु माया।
कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया।।
३/१३/५-८

ईश्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ।।
३/१४/०

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, आदरणीय महंत श्रीदूधाधारी मठ और अन्य सभी समुपस्थित संत-महात्माओं के चरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम है। आप सब लोग, जो जिज्ञासु भाव से यहाँ उपस्थित हुए हैं, उनका स्वागत, अभिनन्दन ! अभी परम श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने जिसे उन्होंने धृष्टता कहा, यह तो संतों की अपनी उनकी विनम्रता है, पर वह उनकी धृष्टता नहीं है, यह तो उनकी परम कल्याणी वाणी है। वह वाणी आपको कल के कथा-प्रसंग से केवल जोड़ती ही नहीं है, अपितु आगे जो प्रसंग होने वाला है, उसकी दिशा में भी उन्मुख करती है। मूल प्रश्न वही शाश्वत प्रश्न है और उस प्रश्न का उत्तर अनगिनत बार अनेकानेक अवतारों के माध्यम से, आचार्यों के माध्यम से, सन्तों के माध्यम से, महापुरुषों के माध्यम से हमें मिलते रहे। उन समाधानों में कभी-कभी भिन्नता भी होती है, कभी-कभी खण्डन-मण्डन भी होता है। ऐसी स्थिति में कई बार मुझसे कई साधकों द्वारा यह कहा गया कि बुद्धि कुछ भ्रमित हो जाती है कि हमें किस पथ का, किस मान्यता का, किस मार्ग का अनुगमन करना चाहिए। यह बात तो यथार्थ ही है। आप ग्रन्थ में पढ़ेंगे, तो उनमें भी भिन्नता होगी। प्रवचनों में भी भिन्नता होगी और यह आवश्यक नहीं है कि कल एक बात जो एक व्यक्ति ने कही है, वह आज भी वैसा ही कहेगा। एक ही व्यक्ति आज भिन्न रूप में कोई बात रखता है, उसी बात को दूसरे दिन वह भिन्न रूप में रखता है, तो उससे व्यक्ति कभी-कभी उलझन में पड़ जाता है।

उस उलझन को दूर करने का एक उपाय तो यह है कि व्यक्ति इस चेष्टा में उलझ जाए कि इनमें सर्वश्रेष्ठ क्या है? यह तो सभी कहेंगे कि मेरा सिद्धान्त, मेरी मान्यता, मेरा मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। इसके स्थान पर कल्याणकारी यह है कि व्यक्ति यह निर्णय करने के स्थान पर कि सर्वश्रेष्ठ क्या है, सत्य क्या है, वास्तविकता क्या है, उसके स्थान पर अगर वह एक शब्द जोड़ ले कि मेरे लिये कौन-सी मान्यता, कौन-सी धारणा कल्याणकारी है, तो बहुत सी उलझनें कम हो जाती हैं। आप में से जो लोग श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़ते होंगे, सुनते होंगे, उसमें भगवान ने अनेक रूपों में अर्जुन को उपदेश दिया, किन्तु अर्जुन ने भगवान से कहा – प्रभु, आपने उपदेश तो बहुत सुन्दर दिए लेकिन –

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
गीता ३/२

आपने मिली-जुली कुछ ऐसी बातें कही कि मैं निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ कि मेरे लिए क्या उचित है, मेरे लिए

क्या कल्याणकारी है। पहले तो भगवान अर्जुन को यह छूट दे देते हैं कि जब वे राजयोग का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि मैंने तुम्हें रहस्यपूर्ण जो ज्ञान है, उसका उपदेश दे दिया और समस्त योगों के विषय में तुमने मुझसे सुना, अब तुम विचार करो और अब तुम निर्णय करो कि उसमें से क्या कर सकना तुम्हारे लिए सम्भव है और क्या कल्याणकारी है।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।।

गीता १८/६३

इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कह दिया। अब तू इस रहस्ययुक्त ज्ञान को पूर्णतया भलीभाँति विचार कर, जैसे चाहता है, वैसे ही कर।

पर अर्जुन ने इतना होते हुए भी सोचा कि अब मैं निर्णय करूँ कि मेरे लिये क्या कल्याणकारी है और मेरे ऊपर ही श्याम सुन्दर ने छोड़ दिया, तो मैं तो बुद्धि से जैसा समझता था, वह उससे भिन्न था। मैं तो युद्ध से विरत होना चाहता था। इसलिए अन्त में वे भगवान से ही निवेदन करते हैं कि अब मेरे लिये जो कल्याणकारी हो, उसका निर्णय आप ही कर दीजिए। आप ही कृपा करके बता दीजिए। तब वह महानतम वाक्य जिसमें भगवान अुर्जन से स्पष्ट कहते हैं –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

गीता १८/६६

अर्जुन, तुम समस्त धर्मों का परित्याग करके मेरे शरण में आ जाओ, मैं स्वयं तुम्हें सभी पापों से मुक्त करूँगा। सही दिशा में ले चलने का भार मुझ पर है। वस्तुत: श्रीरामचरित-मानस और जो हमारे महानतम ग्रन्थ हैं, श्रीमद्भागवत, महाभारत, रामायण; सभी में अनेकानेक रूपों में मनुष्य के मन, बुद्धि और चित्त की समस्याओं का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है और उसका क्या समाधान हो सकता है, यह बताया गया है। उसको अगर आप ध्यान से सुनते हैं, तो उसमें से कोई एक विचार या पथ, जो आपके लिये उपयुक्त हो, आप ग्रहण कर सकते हैं।

जिस अहंता और ममता की व्याख्या प्रारम्भ की गई थी और जिसका परम श्रद्धेय स्वामीजी ने प्रथम दिन जो उद्धरण दिया था कि ममता ही मृत्यु है और जब व्यक्ति ममता से मुक्त हो जाता है, तो अमृतत्व पा लेता है। मैं और मेरापन एक दूसरे से अभिन्न हैं। मैं नहीं होगा, तो मेरापन असम्भव है। संसार में सारा व्यवहार तो मैं और मेरेपन के आधार से ही होता है। जिसके बिना हम जीवन व्यतीत नहीं कर सकते, वह मैं और मेरापन है और वही मैं और मेरापन अनगिनत समस्याओं को भी संसार में जन्म देता है। लक्ष्मण ने माया के सम्बन्ध में ही प्रश्न पूछा था। श्रीलक्ष्णमजी को उपदेश देते हुए भगवान श्रीराम ने उस समय उसे दो रूप दिए, दो भागों में उसके दो नाम बताए। मैं आशा करता हूँ, आप पूरे मनोयोग से सुन रहे होंगे। आज और कल, दो ही दिन शेष हैं, तो उसमें आप जितने अधिक तदाकार हो सकेंगे, उतना स्पष्ट उसे ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त हो जायेगी। उसमें भगवान ने पहला वाक्य यह कहा कि माया के दो भेद हैं –

तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ।
बिद्या अपर अविद्या दोऊ।। ३/१४/४

एक माया जिसे वे विद्या का नाम देते हैं और दूसरी माया जिसे वे अविद्या का नाम देते हैं। और दोनों का अन्तर बताते हुए प्रभु ने कहा कि –

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा।
जा बस जीव परा भवकूपा।।

यह अविद्या माया अत्यन्त दुष्ट रूपा है और इसी के कारण व्यक्ति संसार-कूप में पड़ा हुआ है। दूसरी विद्या माया की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि विद्या माया वह माया है, जो प्रभु की शक्ति के द्वारा संसार का निर्माण करती है –

एक रचइ जग गुन बस जाकें।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।। ३/१४/५-६

यह जो विद्या माया है, उसी के द्वारा जगत् का निर्माण होता है। जो व्यक्ति इस सत्य को जान लेता है कि विद्या माया भगवान की शक्ति के द्वारा ही संचालित है, वह व्यक्ति भ्रम से मुक्त हो जाता है। उसका मूल अगर संक्षेप में, सरल शब्दों में उसके तात्पर्य को हृदयंगम करें या कर सकते हैं कि एक भेद वह है, जिसके मूल में वे ही दो शब्द हैं। भगवान ने माया की जो व्याख्या की उसमें दो शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया कि माया क्या है?

मैं अरु मोर तोर तैं माया। ३/१४/२

मैं और मेरापन और तू और तेरापन ही माया है। उसको दो रूपों में प्रस्तुत करने का तात्पर्य यह है कि एक मैं और

मेरापन वह है, जिसे व्यवहार के लिये हम और आप उसका प्रयोग करते हैं। लेकिन व्यवहार में प्रयोग करने के बाद भी हमें यह स्पष्ट विवेक बना रहे कि यह मेरी जो स्वीकृति है, वह व्यावहारिक स्वीकृति है, पारमार्थिक नहीं। इसके लिए गोस्वामीजी ने जो दृष्टान्त दिया, वह बड़े महत्त्व का है। नाटक बहुत प्रिय है और नाटक के कुछ पात्र इतने आकर्षक होते हैं कि लोग उनके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं, उसे महत्त्व देते हैं। अभिनेता अनेक नाटकों में काम करते हैं, सिनेमा में काम करते हैं, पर हर नाटक में एक ही नाम से तो नहीं आते, एक ही रूप में भी नहीं आते और उनके चरित्रों में भी भिन्नता होती है। तो अभिनेता की विशेषता क्या है या क्या होनी चाहिए। इसे ही गोस्वामीजी दोहावली रामायण में प्रस्तुत करते हैं कि भगवान भी भक्तों की भावना को पूर्ण करने के लिए, भक्त उसे जिस रूप में देखना चाहता है, वे अवतार लेकर विश्व के रंगमंच पर आते हैं और उस भक्त की इच्छा को पूरी करते हैं। वे ऐसी ही लीला करते हैं। लेकिन अभिनेता की सबसे बड़ी विशेषता क्या होनी चाहिए? जिसके अभाव में बड़ी विपत्ति आ सकती है और वह यह है कि नाटक के सत्य को वह मंच पर प्रस्तुत कर रहा है, पर परदा गिरते ही जब परदे की आड़ में वह चला जाता है, तो वह स्पष्ट रूप से जानता है कि अभी मैं मंच पर जो प्रस्तुत कर रहा था, वह नाटक था, वह कोई वास्तविक नहीं था। नाटक में उसने किसी को पिता के रूप में, भाई के रूप में, किसी को पत्नी के रूप में, किसी को शत्रु के रूप में स्वीकार किया है, पर परदा गिरने के बाद न तो वह किसी को शत्रु मानता है, न किसी के सम्बन्ध को मानता है। तो चतुर अभिनेता कौन है? जो अलग-अलग नाटकों में अलग-अलग अभिनय करते हुए भी उससे भिन्न अपने मूल स्वरूप में रहता है। यही उसका अगुणत्व है। यह बड़ा एक गम्भीर तत्त्व है। सभी लोग उसमें थोड़ी कठिनाई का भी अनुभव करते हैं। अगुणत्व क्या है? इसी दोहे में गोस्वामीजी ने एक वाक्य लिखा और वही वाक्य हमारे और आपके जीवन के लिए परम प्रेरक हो सकता है और वह क्या है?

जथा अनेक बेश धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ।।
७/७२/ख

उसकी विशेषता क्या है? कितना सशक्त अभिनय कर रहा है, पर सब कुछ करने के बाद भी वह स्वयं यह भ्रम नहीं पाल लेता कि मैं यही हूँ। मेरा यही परिचय है या इसमें जो हमारे सम्बन्धी हैं, वे वास्तविक सम्बन्धी हैं। यही विद्या और अविद्या माया को समझने का एक दृष्टान्त है। व्यवहार में मैं और मेरेपन को हम शब्दश: स्वीकार करके एक श्रेष्ठ अभिनेता के समान व्यवहार करें। पर व्यवहार करते हुए भी हमारे हृदय में, मस्तिष्क में, चित्त में एक दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि यह सब विश्व के रंगमंच पर मेरी भूमिका है। जो कहा गया उसका पालन करना मेरा कर्तव्य है।

जब उस दिखाई देने वाले सत्य को हम सत्य मान लेते हैं, तो अविद्याग्रस्त हो जाते हैं और जब उस दिखाई देने वाले सत्य को हम मिथ्या मानते हैं, तो हम विद्यामाया के द्वारा संसार का व्यवहार चला रहे हैं। इस प्रसंग में भगवान के इस विद्या-अविद्या के संकेत को कागभुशुण्डि ने भी उत्तरकाण्ड में प्रस्तुत किया। प्रश्न वही था कि नारदजी के जीवन में काम आया, अभिमान आया, नाना प्रकार की वृत्तियाँ आईं। अन्य अनेक भक्तों के जीवन में भी मोह दिखाई देता है। नारदजी के जीवन में मोह, गरुड़जी के जीवन में मोह, सतीजी में मोह। प्रश्न यह था कि संसार में जिन्हें हम बुरा कहते हैं, उनमें मोह दिखाई दे, अभिमान दिखाई दे, तो उसे हम निन्दनीय मानते हैं, पर भक्तों के जीवन में भी जब वही दिखाई दे रहा है, तो फिर भक्त में और संसारी में, ज्ञानी और संसारी में भेद कहाँ है? वहाँ पर इन्हीं दो शब्दों की कागभुशुण्डि जी ने व्याख्या की। उन्होंने कहा, भगवान के जो भक्त होते हैं, उनके जीवन में जो कुछ घटता है, वह अविद्या के द्वारा नहीं होता। वे सूत्र देते हुये कहते हैं –

हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या।
प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या।।
ताते नास न होइ दास कर।
भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर।। ७/७८/२-३

उन्होंने कहा कि भगवान विद्यामाया का विश्व के सामने जब कोई आदर्श रखना चाहते हैं, सावधान करना चाहते हैं, कोई संदेश देना चाहते हैं, तो उसके लिए किसी भक्त को माध्यम बनाते हैं और भक्त उस माध्यम के रूप में उस रूप में दिखाई देते हैं, लेकिन भगवान की प्रेरणा से ही उसके

शेष भाग पृष्ठ ३६० पर

संघर्ष, बलिदान और प्रेरणा-पुरुष : भगवान बिरसा मुण्डा

रामकुमार सिंह

अण्डमान निकोबार द्वीप समूह

हमारा प्यारा भारतवर्ष सम्पूर्ण विश्व में अपनी विविधता के लिए विख्यात है। प्रान्त, जाति, भाषा, रीति-रिवाजों के आधार पर, न जाने कितने आधारों पर इसे विभाजित किया जा सकता है, लेकिन फिर भी हम देखते हैं कि इसकी अखण्डता को कोई चुनौती नहीं दे पाया है। इन सारी अनेकताओं के बीच हमें एकता के सूत्र में बाँधा है, हमारे शहीदों के रक्त ने, जो हमें याद दिलाता है कि हम सबकी माँ भारत माता है और इसकी रक्षा के लिए हमारे पूर्वजों ने बलिदान दिया है तथा जब भी देश पर संकट आएगा, हम इसकी रक्षा में तत्पर रहेंगे।

भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में बसी लगभग ७५० जनजातियाँ जब अपने सपूतों की गौरव गाथा को याद करती हैं, तो एक स्वर्णिम नाम उभरता है – 'बिरसा मुण्डा', जिसे आदिवासी-वनवासी बन्धु बड़े प्रेम से और श्रद्धा के साथ 'धरती आबा – भगवान बिरसा मुण्डा' के रूप में नमन करते हैं। संसद भवन में लगा बिरसा मुण्डा का तैल चित्र और संसद परिसर में लगी उनकी मूर्ति जन-जन को याद दिलाती है कि अल्प शिक्षा, सीमित साधन और आधुनिक सुविधाओं के अभाव के बावजूद आदिवासी समाज ने देश को अंग्रेजों के चंगुल से छुड़ाने के लिए कम योगदान नहीं दिया है। जब तिलक का 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का मन्त्र देश में गूँजा भी नहीं था, उस वक्त गाँधी और सुभाष का नाम भी राजनीतिक पटल पर नहीं आया था, तब झारखण्ड के छोटा नागपुर के पिछड़े आदिवासी क्षेत्र में आजादी का शंखनाद करके और ब्रिटिश सत्ता को चुनौती बिरसा मुण्डा ने चुनौती देकर आश्चर्यचकित कर दिया।

छोटा नागपुर की धरती ने १५ नवम्बर, १८७५ के दिन इस लाल को जन्म दिया। खूंटी थाना के उलिहातु गाँव में बृहस्पतिवार के दिन जन्म लेने के कारण इनका नाम बिरसा पड़ा। पिता सुगना मुण्डा और माता करमी हातु अत्यन्त निर्धन, परन्तु परिश्रमी थे। माता ने खेत में काम करते हुए

ही पुत्र को जन्म दिया था और कपड़े के अभाव में पलाटी पत्ते में लपेट कर घर ले आयी थीं। इनके दो भाई और दो बहनें थीं। बिरसा के पिता उनको पढ़ा-लिखा कर 'बड़ा साहब' बनाना चाहते थे।

बिरसा के पिता ने उन्हें माता के घर भेज दिया, जहाँ बिरसा ने भेड़-बकरियाँ चराते हुए शिक्षक जयपाल नाग से अक्षर-ज्ञान और गणित की प्रारम्भिक शिक्षा पाई। यहीं पर वे ईसाई धर्म प्रचारक के सम्पर्क में आये और निर्धनता एवं शिक्षा प्राप्त करने की चाह में उनके परिवार ने ईसाईयत को अपनाया। बिरसा ने ग्यारह वर्ष की आयु में बपतिस्मा लिया और उनका नाम दाऊद पूर्ति और पिताजी का नाम मसीह दास रखा गया। उन्होंने बुर्जू के स्कूल में प्राथमिक शिक्षा पाई और आगे की पढ़ाई के लिए चाईबासा के लुथरन मिशन स्कूल में दाखिल हुए। चाईबासा स्कूल मिशनरियों का होने के कारण वहाँ बाईबल शिक्षा पर जोर दिया जाता था। छात्रावास में गोमांस दिया जाता था, मुण्डा परिवार जहाँ बिरसा का बचपन बीता, वहाँ गो-पूजन का विधान था और गोमांस खाना उनकी कल्पना से भी परे था। बिरसा ने

गोमांस खाने से मना कर दिया और अपने सहपाठियों को भी इससे परहेज करने के लिए कहा। यह बात जब स्कूल प्रबन्धकों तक पहुँची, तो बिरसा को फटकार मिली और स्कूल से निकाले जाने की धमकी भी दी गई। मुण्डा जनजाति में शिखा (चोटी) रखने की परम्परा है। जब एक दिन एक सहपाठी ने पीछे से उनकी शिखा कतर डाली, तो उनका हृदय हाहाकार कर उठा, आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। स्कूल में मुण्डा लोगों को राक्षसी स्वभाव का बताना तथा उनकी सनातन परम्पराओं का उपहास उड़ाना उनको सहन नहीं हुआ। बिरसा ने पादरी नट्राटे से कहा, 'साहब – साहब एक टोपी है' यानि अंग्रेज पादरी और अंग्रेजी शासक एक ही हैं। बिरसा ने यह संकल्प लिया कि वह एक भी क्षण चाईबासा में नहीं रुकेंगे। बाद में वे बंदगाँव आए तथा वहाँ उनकी भेंट वैष्णव धर्मावलम्बी आनन्द पाण्डे से हुई, जिनसे उन्होंने रामायण, महाभारत, हितोपदेश आदि के बारे में जाना। आगे चलकर उन्होंने मांस खाना छोड़ दिया। वे जनेऊ पहनने लगे, सर पर पीली पगड़ी बाँधने लगे और तुलसी की पूजा करने लगे। अपने समाज के पिछड़ेपन और अज्ञानता को समाप्त करने के लिये उन्होंने दृढ़ संकल्प लिया। आदिवासी समाज को विदेशी मिशनरियों, जमींदारों, अंग्रेज शासकों तथा शोषणकर्ताओं से आजाद करने के लिए संगठित-मुक्ति संघर्ष किया। उन्होंने आदिवासी-वनवासी समाज को संगठन के सूत्र में बाँधने के लिए कई सभाए कीं और उलगुलान क्रान्ति का शंखनाद किया।

बिरसा के इस शंखनाद से आदिवासी युवक जाग उठे। चलकद क्रान्तिकारी आन्दोलन का केन्द्र बना। विरोध के प्रथम चरण के रूप में एक असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। बिरसा अब 'धरती आबा' के रूप में प्रसिद्ध हो गये। बिरसा के आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार भौचक्की रह गई। ब्रिटिश सरकार ने तुरन्त बिरसा को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। पुलिस ने गिरफ्तारी के लिए एक टुकड़ी को चलकद रवाना किया, लेकिन गाँव वालों के सशक्त विरोध ने बन्दूकों से लैस पुलिस को भी थर्रा दिया। परन्तु उन्हें छल-प्रपंच से गिरफ्तार कर २५ अगस्त, १८९५ को हजारीबाग जेल लाया गया। बिरसा की गिरफ्तारी से उनके अनुयायियों में अंग्रेजों से टक्कर लेने की इच्छा और बलवती हो गई। ३० नवम्बर, १८९७ को जब बिरसा रिहा हुए, तो पूरा वनवासी अंचल जाग उठा। वे सब तीर-धनुष के साथ आन्दोलन की माँग कर रहे थे। अंग्रेजों से भीषण-संग्राम के लिये प्रशिक्षण, संगठन, नीतियाँ और हथियार-संग्रह का काम आरम्भ हो गया। बिरसा की वनवासी समाज और आदिवासी समाज के पूर्वजों का शोषण और अन्याय के विरुद्ध जमींदारों और अंग्रेजों से लड़ाई होने लगी। आदिवासी योद्धा बिरसा के नेतृत्व में कई पुलिस थानों, गिरजाघरों, सरकारी कार्यालयों आदि को आग के हवाले कर दिया गया। जमींदारों से अपने को मुक्त कराने के लिये लगान न देने और जंगल का अधिकार वापस लेने की बात कही गई। इन सबसे अंग्रेजी सरकार बौखला गई और कई बिरसाइतों को गिरफ्तार किया गया, जिससे आन्दोलन और उग्र हो गया।

९ जनवरी, १९०० के दिन बिरसा डोंबारी पहाड़ी पर सभा कर रहे थे। सभी मुण्डा, उराँव, संथाल, खड़िया, हो, माँझी, आदिवासी लोग जुटे थे। हजारों की संख्या में आदिवासी बिरसा के गीत गाते, माथे पर चंदन लगाए, हाथ में सफेद और लाल पताका लिए एकत्रित हुए थे। तब अंग्रेजों को खुफिया सूचना मिली कि बिरसा सभा कर रहे हैं। कमिश्नर स्ट्रीट फील्ड डोंबारी पहाड़ी पहुँचे और अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलाने लगे। दोनों ओर से संग्राम आरम्भ हो गया। तोपों और बन्दूकों के सामने तीर, धनुष, कुल्हाड़ी, भाला और पत्थर कहाँ टिक पाते। पूरी डोंबारी पहाड़ी खून से लाल हो गई। बिरसा आन्दोलन को जीवित रखने के लिए वहाँ से आग्रह करने पर सुरक्षित जंगल में चले गए। परन्तु भेदियों की मदद से उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। ९ जून, १९०० के दिन इस महान आदिवासी स्वतन्त्रता सेनानी की रहस्यमय ढंग से राँची जेल में मृत्यु हो गई। कहा गया कि उन्हें हैजा था, लेकिन धारणा यह है कि उन्हें विष दिया गया। बिरसा आज हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु उनके जलाए दीप आज भी जल रहे हैं। आज भी वनवासी-आदिवासी समाज उनको 'धरती आबा' के रूप में याद करता है। वर्तमान भारत की परिस्थिति में जनजाति समाज उपेक्षा, दरिद्रता, शोषण, विदेशी षड्यन्त्रों, दीनता आदि का शिकार बना है। आवश्यकता है कि जनजाति बन्धुओं को गले लगाएँ, तभी उनके सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त होगा और भारत पुन: वैभवशाली बनकर विश्व का मार्गदर्शन करेगा। यही भगवान बिरसा मुण्डा के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ○○○

व्रज में श्रीमाँ सारदा

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

(गतांग से आगे)

श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन – ''उस समय भादों का महीना समाप्तप्राय था। वर्षा के अन्त में वृन्दावन के वनों की शोभा अपूर्व हो गई थी। स्थान-स्थान पर मयूर बोल रहे थे। मृगों के झुण्ड निडर होकर चर रहे थे, पर अचानक मनुष्यों की आहट पाते ही कान खड़े कर जल्दी से भाग जाते थे। भरी यमुना कलकल शब्द करती चंचल गति से बह रही थी। वृन्दावन की वही शोभा, वही निकुंज वन, श्रीराधिका के विरहाश्रु से सिक्त वे ही धूलिकण, सभी तो थे। सर्वत्र व्रजराज की चमकती हुई स्मृति हृदय में उनके दर्शन की लालसा उत्पन्न कर रही थी, पर कृष्ण कहाँ हैं? वृन्दावन में आकर विरहिणी श्रीमाँ के मन में हाहाकार मच गया। इसके पहले उन्हें कम से कम तीन बार चर्म चक्षुओं से श्रीरामकृष्ण के दर्शन मिले थे। किन्तु जो चिर-वाञ्छित हैं, जिनके चरणों में श्रीमाँ के सम्पूर्ण मन और प्राण दृढ़ रूप से बँधे हैं, उनके नित्यदर्शन का अभाव उनके अन्त:करण में प्रतिक्षण मर्मान्तक पीड़ा उत्पन्न करके बार-बार यह प्रश्न उठाने लगा, 'वे कहाँ हैं?, वृन्दावन में आकर श्रीमाँ के नेत्रों से अविराम आँसू बरसते रहे। उनके साथ योगीन माँ के आँसू भी मिल गए। वे श्रीरामकृष्ण के देहत्याग के पूर्व ही वृन्दावन आ गई थीं। उनको देखते ही श्रीमाँ शोकावेग से 'अरी योगेन' कहकर उन्हें छाती से लगा रोने लगीं। दूसरों के मुख से सब वृत्तान्त सुन योगीन-माँ की भी आँखों से अविराम अश्रुवर्षा होने लगी। अन्त में एक रात को श्रीरामकृष्ण उन्हें दर्शन देकर बोले, 'अरी, तुम सब इतना रोती क्यों हो? मैं तो यहीं हूँ। गया कहाँ हूँ? यह तो मानो केवल एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना है।'[१८]

गोपी-राधा भाव – मैं ही राधा हूँ – श्रीरामकृष्ण देव के यह कहने के पश्चात् कि 'मैं तो यहीं हूँ। गया कहाँ हूँ? यह तो मानो केवल एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना है।' इसके पश्चात् श्रीमाँ का उद्वेलित शोक-सिन्धु कुछ शान्त हुआ। पर श्रीरामकृष्ण का अदर्शन-जनित विरह अब दूसरे ढंग से प्रकट होने लगा। श्रीमद्भागवत के गोपी-गीत में उल्लिखित है कि रासमण्डल से श्रीकृष्ण को सहसा अन्तर्हित होते देख गोपियाँ विह्वल हो उन्हें खोजने लगीं; पर विफल मनोरथ हो विरहजनित तन्मयता के कारण अपने को ही श्रीकृष्ण मान उनकी शुभ लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। श्रीमाँ के शरीर और मन में भी इस समय वैसी ही तन्मयता दिखाई देने लगी। वे कभी आत्मविस्मृत हो बिना किसी के देखे अकेली विस्तृत रेतीली तट-भूमि को लाँघ यमुना किनारे पहुँच जातीं। बाद में उनके साथी उन्हें खोजकर वापस ले आते। कौन जाने, उस समय श्रीमाँ अपने को श्रीराधिका और श्रीरामकृष्ण को श्रीकृष्ण समझ हृदय-वृन्दावन की नित्य व्रजलीला में निमग्न रहा करती हों। सुना जाता है कि एक बार उन्होंने किसी भक्त के प्रश्न के उत्तर में कहा था, 'मैं ही राधा हूँ।'[१९]

श्रीमाँ का राधा स्वरूप – श्रीमाँ के जीवन में एक बालक को हुए दर्शन का उल्लेख है, जिसमें माँ और राधारानी के अभेद होने का प्रमाण मिलता है, ''दीक्षा के समय अथवा इसके अलावा, कुछ लोगों को श्रीश्री माँ को अपने इष्ट रूप में या किसी अन्य रूप में दर्शन पाने का सौभाग्य मिला है। जब एक लड़का, जिसने बचपन में अपनी माँ को खो दिया था, श्रीश्रीरामकृष्ण पुंथी को पढ़ते-पढ़ते श्रीमाँ के सन्दर्भ से अवगत होता है, तो उसे लगता है कि उसे अपनी माँ पुन: मिल गई है। उसकी गर्भधारिणी माँ का नाम भी सारदा था। माँ की अन्तिम बीमारी के समय, उसने माँ से भेंट की, तब उसे माँ का स्नेह प्राप्त हुआ और उसकी इच्छानुसार देर रात तक उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला। योगिन-माँ इस समय माँ के पास बैठी थीं। माँ के पैर छूने से लड़का वशीभूत हो जाता है, और 'गुरु और इष्ट-अभेद', 'ठाकुर और माँ अभेद' ठाकुर माँ को जगदम्बा के रूप में पूजते थे, इसलिए वह माँ काली हैं, 'जो राधा हैं, वही सारदा हैं', ये चार विचार क्रमिक रूप से उदित होते ही वह माँ की मूर्ति के स्थान पर श्रीराधाकृष्ण की युगल छवि, ठाकुर,

माँ-काली और श्रीराधामूर्ति का दर्शन करता है। काली का रूप देखकर वह भय से वशीभूत हो गया, माँ ने उसे श्रीहस्त से स्पर्श कराया और उसे प्रकृतिस्थ कर दिया। राधा रूप दर्शन के पश्चात् माँ ने कहा, 'तुम वैष्णव कुल में पैदा हुए हो। उसी के पुण्य के फलस्वरूप तुम्हें यह दर्शन प्राप्त हुआ है। यदि और कभी इसका दर्शन करो, तो माँ कहकर मत पुकारना।''[२०] यहाँ पर स्पष्ट करना आवश्यक है कि राधा जी को राधा रानी या सखी रूप से पुकारा जाता है, माँ के रूप में नहीं, इसलिए यहाँ यह कहा गया है कि यदि इसका दर्शन हो, तो माँ कहकर सम्बोधित मत करना।

'कालाबाबू के कुंज' में रामकृष्ण भाव – जो स्वयं श्रीरामकृष्ण देव की भक्ति प्रदान करनेवाली हैं, उन्हें उनका भाव मुहुर्मुहुः हो, इसमें कोई आश्‍चर्य नहीं है, परन्तु दक्षिणेश्‍वर के नौबतखाने में वे फल्गु नदी की भाँति गुप्त रूप से निवास किया करती थीं। हमने उनके जीवन वृत्तान्त

में देखा है कि दक्षिणेश्‍वर आनेवाले लोग कहते थे कि हमने उनका नाम सुना है, पर उन्हें कभी देखा नहीं। जगदम्बा के वैभव के प्रकाश का प्रारम्भ देखने का सौभाग्य वृन्दावन धाम को मिला। 'कभी-कभी वे श्रीरामकृष्ण के चिन्तन में तन्मय हो जाया करतीं। 'कालाबाबू के कुंज' में एक दिन ध्यान करते-करते उन्हें गम्भीर समाधि लग गई, जो किसी तरह टूटती ही न थी। योगीन-माँ ने बहुत देर तक भगवान का नाम सुनाया, पर समाधि भंग होने का कोई लक्षण नहीं दिखा। अन्त में योगीन महाराज ने आकर नाम सुनाया, तब समाधि कुछ-कुछ कम हुई। समाधि-भंग के उपरान्त श्रीरामकृष्ण जिस प्रकार बोलते थे, उसी प्रकार श्रीमाँ भी बोलीं, 'खाऊँगी।' कुछ भोजन, जल और पान सामने रखने पर उन्होंने श्रीरामकृष्ण की ही तरह थोड़ा-थोड़ा खाया। इतना ही नहीं, श्रीरामकृष्ण जैसे पान के बीड़े का नुकीला भाग दाँत से काटकर फेंक देते थे, वैसा ही श्रीमाँ ने भी किया। उस समय योगीन महाराज के कुछ प्रश्‍न करने पर श्रीमाँ ने ठीक श्रीरामकृष्ण की ही तरह उत्तर दिया। सचमुच उस समय उनके हाव-भाव बिल्कुल श्रीरामकृष्ण की ही तरह दिखाई पड़ रहे थे। बाह्यावस्था में आकर उन्होंने स्वयं ही बताया कि उन्हें श्रीरामकृष्ण का आवेश हुआ था। विरहातुरा श्रीमाँ का सारा मन उस समय श्रीरामकृष्ण में मग्न हो जाने के कारण उनके जीवन में ऐसा प्रचण्ड वैराग्य आ गया था कि ऐसा प्रतीत होता मानो व्यावहारिक जगत् से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उस समय उनके आचार-व्यवहार देखने और बातचीत सुनने से ऐसा लगता मानो वे एक अत्यन्त सरल बालिका हैं।[२१]

प्रथम दीक्षा

'जोगेनई प्रथम शिस्सो होइलन माँर।
माँ जाँहारे कोरे कृपा किबा भय ताँर।।[२१अ]

अर्थात् योगेन महाराज (स्वामी योगानन्द जी) श्रीमाँ के प्रथम शिष्य थे। श्रीमाँ जिन पर कृपा करती हैं, उसे और क्या भय है !

काला बाबू कुंज ही वह पावन स्थल है, जहाँ श्रीमाँ ने दीक्षा देना प्रारम्भ किया था। 'वृन्दावन में श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ से अपना एक अपूर्ण कार्य पूरा करवाया, जिससे श्रीमाँ के जीवन में एक नए अध्याय का प्रारम्भ हुआ। उन्होंने एक दिन श्रीमाँ को दर्शन देकर कहा, 'तुम योगीन (स्वामी योगानन्द) को यह मन्त्र दो।' पहले दिन श्रीमाँ इसे अपने मस्तिष्क की कल्पना समझ शान्त रहीं। उन्हें लज्जा भी आई – लोग कहेंगे, 'माँ इतनी जल्दी शिष्य बनाने लगीं।' दूसरे दिन भी वही आदेश हुआ, पर श्रीमाँ ने उस पर ध्यान नहीं दिया। तीसरे दिन श्रीरामकृष्ण के पुन: प्रकट होने पर श्रीमाँ ने उनसे कहा, 'मैं तो उससे बातचीत भी नहीं करती, फिर मन्त्र कैसे दूँ?' श्रीरामकृष्ण ने परामर्श दिया, 'तुम बेटी योगेन (योगीन-माँ) से कहना, वह पास रहेगी।' उन्होंने यह भी बता दिया कि कौन-सा मन्त्र देना होगा। उसके पश्‍चात् श्रीमाँ ने योगीन-माँ के द्वारा योगीन महाराज से पुछवाया कि उनकी मन्त्रदीक्षा हुई है या नहीं? उन्होंने बतलाया, 'नहीं, ठाकुर ने मुझे कोई विशेष इष्टमन्त्र नहीं दिया है। मैं अपनी रुचि के अनुसार एक नाम जपता हूँ।' योगीन महाराज ने यह भी

बतलाया कि उन्हें भी श्रीरामकृष्ण से वैसा ही आदेश मिला है, लेकिन लज्जा के मारे वे कुछ कह न सके थे। अन्त में श्रीमाँ उन्हें मन्त्र देने को सहमत हुईं। दीक्षा के दिन श्रीरामकृष्ण के फोटो तथा देहावशेष की डिबिया को सामने रख पूजा करते-करते श्रीमाँ को भावावेश हो आया। तब उन्होंने योगीन महाराज को बुलाकर बैठने को कहा और उसी भावावस्था में उन्हें मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र इतने जोर से कहा कि पास के कमरे से योगीन-माँ ने भी उसे सुना। इस प्रकार योगीन महाराज ही श्रीमाँ के प्रथम दीक्षित शिष्य थे।''[२२]

वृन्दावन में माँ के मुख्य आकर्षण – श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के पश्चात् माँ की मनोदशा का वर्णन हम कर चुके हैं और उस स्थिति से श्रीमाँ को स्वाभाविक स्तर पर लाने के लिये उन्हें श्रीधाम वृन्दावन लाया गया था। पर निरन्तर ठाकुर का स्मरण और उनकी विरह-वेदना को तत्काल ही शान्त कर पाना कठिन था। यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि श्रीमाँ का वृन्दावन आना अन्य तीर्थों के दर्शन से भी भिन्न था। क्योंकि उनके यहाँ आने के तीन प्रमुख उद्देश्य थे।

'कृष्णविरह के उन्माद में राधारानी के हृदय की वेदना, अपने जीवन के सर्वेश्वर को पाने के लिए कुंज में उनकी खोज की व्याकुलता, अपने प्रियतम के अदृश्य होने पर देहत्याग का संकल्प, ऐसी कई बातें माता ठाकुरानी के मन में एक-एक करके उठने लगीं। उनका भाव-समुद्र छलकने लगा, नेत्र अश्रुओं को रोक सकने में असमर्थ हो गये और प्रेमाश्रुओं की धारा बह निकली।

इस मनोभावना से वे लोग पूर्व निर्धारित कालाबाबू कुंज पहुँचे। वृन्दावन में माँ के तीन मुख्य आकर्षण थे, ठाकुर के प्रिय स्थानों के दर्शन, उनका मन्दिरों व कुंजों में खोज और गौरी माँ की खोज।[२३]

गौरी माँ की खोज – 'वृन्दावन आने से पूर्व माता ठाकुरानी का विचार था कि वृन्दावन जाकर वे सरलता से गौरी माँ से मिल लेगीं या उन्हें ढूँढ़ लेगीं। पर यहाँ पहुँचकर स्थिति अलग थीं। उन्होंने योगानन्दजी और अद्भुतानन्द जी से गौरी माँ की खोज करने को कहा। उन्होंने बहुत खोजा, लेकिन गौरी माँ उन्हें नहीं मिलीं।

गौरी माँ एक विशेष कार्य के लिये वृन्दावन आई थीं। सूर्योदय से सूर्यास्त तक उपवास रखकर एक ही आसन पर बैठकर नौ महीने तक क्रमिक रूप से साधना करेंगी। सर्वप्रथम वे वृन्दावन में कालाबाबू कुंज में आयी थीं, फिर कहीं एकान्त स्थान पर चली गयी थीं।

ठाकुर की मृत्यु से कुछ समय पहले योगेन माँ भी वृन्दावन आई थीं, लेकिन उनकी गौरी माँ से भेंट नहीं हुई थी। ठाकुर की इच्छानुसार बलराम बोस ने कलकत्ता वापस आने के लिये गौरी माँ को वृन्दावन में दो पत्र लिखे। कालाबाबू कुंज के कर्मचारियों को नहीं पता था कि गौरी माँ उस समय कहाँ हैं, इसलिये वे गौरी माँ को ठाकुर के आदेश और पीड़ा के महत्त्वपूर्ण संवाद को सूचित नहीं कर सके। जब उनकी तपस्या समाप्त हुई, तब यहाँ भी सब कुछ समाप्त हो गया। वृन्दावन आकर सारा समाचार जानकर वह पितृहीन कन्या की भाँति दुख से रोने लगीं। फिर पश्चाताप हुआ कि ठाकुर ने अन्तिम समय में उन्हें इस तरह बचने के लिये वृन्दावन क्यों भेजा? जब उन्होंने अपने जीवन को अनावश्यक समझकर 'भृगुपत' में शरीर छोड़ने का निर्णय लिया, तो उन्होंने देखा – ठाकुर श्रीरामकृष्ण उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें फटकार लगाई और कहा, 'तुम मरोगी क्या?' गौरी माँ ठाकुर को इस तरह देखकर स्तम्भित रह गईं। भूमिष्ठ होकर प्रणाम करने के पश्चात् जब वे उठीं, तो वे अदृश्य हो चुके थे। वे समझ गयीं कि उनके शरीर-त्याग की इच्छा से ठाकुर सहमत नहीं हैं। उनके जीवन का कर्तव्य अभी पूरा नहीं हुआ है। वे वापस आ गयीं।[२४]

''एक दिन योगानन्द जी रावल में राधारानी के प्राकट्य स्थल के दर्शन करने गये, तो दूर से एकान्त स्थान पर देखा कि एक गेरुए रंग की साड़ी सूख रही है। उनके मन में कौतूहल हुआ। पास जाकर देखा, तो गौरी माँ एक गुफा में योगमुद्रा में बैठी ध्यानमग्न थीं। उस समय उन्होंने किसी प्रकार का विघ्न करना उचित न समझा, लेकिन श्रीमाँ को तुरन्त यह शुभ सन्देश देने में सक्षम होने के विचार से उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई।

अगले दिन ही माँ और कुछ अन्य लोग गौरी माँ के अद्भुत साधना-स्थल का दर्शन करने और

उन्हें लाने गए। बहुत दिनों बाद यह भेंट हो रही थी, ठाकुर के लीलासंवरण के बाद यह पहली भेंट थी। माँ और गौरी माँ शोक संतप्तों की भाँति रोने लगीं। ठाकुर के बिछड़ने की वेदना पुन: उठ जाने से, सभी शोक में डूब गये।

लीला-संवरण के पश्चात्, ठाकुर ने उन्हें दर्शन देकर कहा था कि वे सधवा वस्त्र का त्याग न करें, यह विवरण देते हुए माँ ने कहा कि ठाकुर ने मुझसे इस सन्दर्भ में तुम से पूछने के लिए कहा था। शास्त्रों में क्या लिखा है? अब तुम बताओ। मैं तब से तुम्हें ढूँढ रही हूँ।

गौरीमाँ ने कहा, हमें अन्य ग्रन्थों से क्या काम? ठाकुर के शब्द शास्त्रों से भी ऊपर हैं। ठाकुर सदैव विद्यमान हैं और तुम स्वयं लक्ष्मी हो, यदि तुमने कभी सधवा वेश का त्याग किया, तो संसार का अहित होगा।

दोनों ठाकुर के चिन्तन में डूब गए। अपनी महासमाधि लेने के पूर्व गौरी माँ को देखने की इच्छा व्यक्त करते हुए ठाकुर ने कहा था, ''इतने लम्बे समय तक वह निकट रही, पर अन्तिम समय न देख सकी, तो ऐसा लगता है जैसे मेरे हृदय मरोड़ रहा है,'' माँ की यह बात सुनकर गौरी-माँ का हृदय जलने लगा।

माँ ने आगे कहा, ''ठाकुर कहकर गए हैं – ''तुम्हारा जीवन जगदम्बा की सेवा में लगेगा।''

रात्रि के समय जब वे गुफा के अन्दर धूनी जलाकर आपस में बातें कर रही थीं, तभी दो साँप गुफा में प्रवेश कर गये। श्रीमाँ ने साँप को इतने निकट देखकर भयभीत स्वर में कहा, 'हे गौरदासी, क्या होगा, यहाँ तो दो साँप हैं।' गौरीमाँ ने शान्ति से कहा, 'वे ब्रह्ममयी के दर्शन करने आये हैं। 'चिन्ता मत करो माँ, वे प्रसाद मिलते ही चले जाएँगे।''

यह कहते हुए गौरी माँ ने दामोदर का कुछ प्रसाद एक कोने में डाल दिया। दोनों साँपों ने उसे निगल लिया और धीरे-धीरे वहाँ से चले गए। श्रीमाँ इतनी देर तक उन्हें चुपचाप देखते रहीं, जब वे चले गए, तो उन्होंने कहा, 'यह क्या अनर्थ है। तुम यहाँ साँपों के साथ कैसे रहती हो?'[२५]

तीर्थ-दर्शन – श्रीमाँ ने वृन्दावन की यात्रा दो बार की थीं, जिसमें ''पहली बार की तीर्थयात्राओं के समय ठाकुर की महासमाधि से मन विरह से पीड़ित था, इसलिए वे सभी स्थानों और मन्दिरों का ध्यानपूर्वक दर्शन नहीं कर सकी थीं। तब वे जैसे किसी की बातें सुन नहीं पाती थीं, यदि सुनती भी थीं, तो समझ नहीं पाती थीं। ऐसा लगता था, जैसे बाह्य जगत् को भूल गई थीं। पर इस बार वे निश्चिन्त होकर अपनी माँ के साथ समस्त स्थान घूमने लगीं।''[२६] इन दोनों दर्शनों का वर्णन हम प्रसंग आने पर स्पष्ट करेंगे।

जैसाकि हम उल्लेख कर चुके हैं कि वृन्दावन में माँ के तीन मुख्य आकर्षण थे, ठाकुर के प्रिय स्थानों के दर्शन, उनकी मन्दिरों व कुंजों में खोज और गौरी माँ की खोज। अब हम श्रीमाँ के तीर्थ-दर्शनों का उल्लेख करने जा रहे हैं। तीर्थ-दर्शन में श्रीमाँ की स्वाभाविक रुचि थी, ऐसा विभिन्न स्थानों पर उल्लेख मिलता है। तीर्थ-दर्शनों में भी माँ का दीन-भाव ही था। इसका पता श्रीमाँ के जीवन की एक घटना से ज्ञात होता है – 'पुरी में बलराम बाबू के परिवार का विशेष नाम है। इस कारण पण्डा गोविन्द सिंगारी ने माँ को पालकी में बैठाकर जगन्नाथ-दर्शन के लिए ले जाने का आग्रह किया। इस पर श्रीमाँ ने कहा था, 'नहीं गोविन्द, तुम आगे-आगे रास्ता दिखाते हुए चलना और मैं दीन-हीन कंगालिनी के समान तुम्हारे पीछे-पीछे जगन्नाथ-दर्शन को जाऊँगी।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि माँ ने एक साधारण मनुष्य की भाँति ही तीर्थ-दर्शन किये थे।

स्वामी अद्‌भुतानन्द जी महाराज अपनी स्मृति में कहते हैं,' '...कीर्तन सुनना उन्हें (श्रीमाँ को) बड़ा पसन्द था। बीच-बीच में वे मुझे और लक्ष्मीदीदी को साथ लेकर भगवानजी के आश्रम में नाम सुनने को जाया करती थीं। (इन भगवानजी ने कुछ काल तक गंगामाई के आश्रम में निवास किया था) ...बलराम बोस के चाचा वृन्दावन में निवास करते हुए वैष्णव सेवा करते थे। वे हम लोगों का बड़ा यत्न करते थे और एक-एक दिन एक-एक मन्दिर का प्रसाद मँगवाकर हमें खिलाते थे।'[२७] इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से श्रीमाँ तत्कालीन सभी मन्दिरों से युक्त रहीं। वृन्दावन के विभिन्न तीर्थों में श्रीमाँ जाया करती थीं, इसका उल्लेख विभिन्न स्थानों पर मिलता है।[२८] पर यहाँ उनके श्रीमुख से सुनकर तथा उनके अन्तरंगों के द्वारा जो लिपिबद्ध हुआ है, उसका उल्लेख हम करेंगे। **(क्रमशः)**

सन्दर्भ-सूत्र – १८. श्रीमाँ सारदा देवी ११८ **१९.** वही, ११८ **२०.** श्रीश्रीसारदा देवी, ब्रह्मचारी अक्षय चैतन्य १६७-६८ **२१.** श्रीमाँ सारदा देवी ११८-११९ **२१अ.** श्रीमाँ सारदा पूँथी ८० **२२.** वही, १२० **२३.** सारदा-रामकृष्ण १२३ **२४.** वही, १२५ **२५.** वही १२६ **२६.** वही, १४० **२७.** अद्‌भुत सन्त अद्‌भुतानन्द १७४ **२८.** श्रीमाँ सारदा देवी २८७

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त आत्म-विकास के सूत्र

ओंकार कोसले

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर

कृष्ण समान प्रबल कर्मठता,
बुद्ध-हृदय, शंकर का ज्ञान,
चिर समाधि के गिरि-शिखरों से,
द्रवित हुए तुम आर्त स्वरों से।
करुणा गंगा होकर उतरे,
शीतल करने जन-मन प्राण,
ऐसे स्वामी विवेकानन्द को,
मेरा कोटि कोटि प्रणाम।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि ''मेरा आदर्श अवश्य ही थोड़े शब्दों में कहा जा सकता है और वह है – मनुष्य जाति को उसके दिव्य स्वरूप का उपदेश देना और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे प्रकट करने का उपाय बताना।' 'प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य तथा अन्त:प्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।' स्वामी विवेकानन्द ने आत्मविकास के प्रमुख सूत्र इस प्रकार व्यक्त किए हैं –

आत्मविकास का **पहला सूत्र** है – **आत्मविश्वास।** स्वामीजी आत्मविश्वास की उपलब्धि पर जोर देते हुए कहते हैं – ''श्रद्धा-श्रद्धा! अपने आप पर श्रद्धा, परमात्मा में श्रद्धा, यही महानता का एकमात्र रहस्य है।'' यदि पुराणों में कहे गए तैंतीस करोड़ देवताओं के ऊपर तुम्हारी श्रद्धा हो और अपने आप पर श्रद्धा न हो, तो तुम कदापि मोक्ष के अधिकारी नहीं हो सकते। स्वयं पर श्रद्धा करना सीखो! इसी आत्मश्रद्धा के बल से अपने पैरों पर खड़े होओ और शक्तिशाली बनो! इस समय हमें इसी की आवश्यकता है।

आत्मविकास का **दूसरा सूत्र** है – **लक्ष्य निर्धारित करना।** स्वामीजी कहते हैं – एक लक्ष्य बनाओ। उस लक्ष्य को ही अपना जीवन-कार्य समझो, हर क्षण उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो, उसी के सहारे जीवित रहो। मस्तिष्क, मांसपेशियाँ, नसें आदि शरीर के प्रत्येक अंग उसी विचार से ओत-प्रोत हों और अन्य प्रत्येक विचार को किनारे पड़े रहने दो। सफलता का यही राजमार्ग है, इसी मार्ग पर चलकर अब तक आध्यात्मिक महापुरुष पैदा हुए हैं।

तीसरा सूत्र है – **मन की एकाग्रता।** मनुष्य और पशु में मुख्य अन्तर उनके मन की एकाग्रता की शक्ति में है। किसी भी प्रकार के कार्य में सारी सफलता इसी एकाग्रता का परिणाम है। हम इसके परिणाम नित्य देखते हैं। कला, संगीत आदि में उच्च उपलब्धियाँ मन की एकाग्रता के परिणाम हैं।

चौथा सूत्र है – **निष्काम कर्म**। स्वामीजी कहते हैं कि निष्काम कर्म ही कर्म का सर्वोत्तम रूप है। कोई कामना नहीं, न धन की, न यश की, न किसी अन्य बात की। जब मनुष्य इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्ध बन जाता है। तब उसमें संसार को बदल देने वाली शक्ति 'महाशक्ति' का आविर्भाव होता है। वही व्यक्ति कर्मयोग के सर्वोच्च आदर्श का प्रतीक बन जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं – **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** – अर्थात् तुम्हारा अधिकार कर्म में है, उसके फल में नहीं। इस प्रकार स्वामीजी निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देते हैं।

पाँचवाँ सूत्र है – **निर्भयता।** स्वामीजी कहते

हैं कि उपनिषदों में यदि कोई ऐसा शब्द है, जो वज्र वेग से अज्ञान राशि के ऊपर पतित हो, उसे जड़ से उखाड़ दे, तो वह है, अभय, निर्भयता। संसार को यदि किसी एक धर्म की शिक्षा देनी चाहिए, तो वह है 'निर्भीकता'। यह सत्य है कि इस ऐहिक जगत् में अथवा आध्यात्मिक जगत् में भय ही पतन और पाप का कारण है। भय से ही दु:ख होता है और यही मृत्यु का भी कारण है। इसी के कारण बुराई और पाप होते हैं।

छठवाँ सूत्र है – **सेवाभाव।** आधुनिक भारत में स्वामी विवेकानन्द सेवाधर्म के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'शिवभाव से जीवसेवा' का सन्देश दिया अर्थात् प्रत्येक प्राणी की सेवा ईश्वर की सेवा मानकर करनी चाहिए। स्वामीजी कहते हैं –

ब्रह्म और परमाणु कीट तक, सब भूतों का है आधार।
एक प्रेममय, प्रिय, इन सबके, चरणों में दो तन मन वार।।
बहुरूपों से खड़े तुम्हारे आगे, और कहाँ है ईश?
व्यर्थ खोज! यह जीव प्रेम की, ही सेवा पाते जगदीश।।

सातवाँ सूत्र है – **चरित्र-निर्माण**। स्वामीजी कहते हैं कि जिस राष्ट्र के नागरिक चरित्रवान होते हैं, वही राष्ट्र महान बनता है। आज आवश्यकता है सच्चे मनुष्यों की, नि:स्वार्थ, सेवापरायण, उदार, हृदयवान मनुष्यों की। ऐसे मनुष्यों की, जो न केवल अपने सुख की बात सोचें, वरन् सभी के सुख की बात सोचें, जो सभी संकीर्णताओं से ऊपर हों, जो भाषा, धर्म और जाति का भेद भूलकर मनुष्य को मनुष्य के नाते श्रद्धा करें, जो दूसरों को अपना बना सकें, जिनका चरित्र उदार हो –

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

अर्थात् उदार चरित्रवालों के लिये पूरा विश्व ही कुटुम्ब है, परिवार है।

आठवाँ सूत्र है – **करुणाभाव।** हमें संसार के लोगों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। स्वामीजी कहते हैं – 'ईसा के समान सहानुभूति रखो और तुम ईसा बन जाओगे। यह सहानुभूति की भावना ही वह शक्ति है, वह बल है, जिससे ईश्वर को प्राप्त करना सम्भव है। इसके बिना कितने ही बौद्धिक व्यायाम से तुम ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते।'

किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं।
पराया दर्द जो अपनाए, उसे भगवान कहते हैं।।

नौवाँ सूत्र है – **आगे बढ़ते जाना**। स्वामीजी कहते हैं कि हमें सब बाधाओं को पार करते हुए, एक वीर की भाँति आगे बढ़ते जाना है – ''एक वीर की भाँति आगे बढ़ जाओ। बाधाओं की परवाह मत करो। यह देह भला कितने दिनों के लिये है? यह सुख-दुख भला कितने दिनों के लिये है? जब मानव शरीर प्राप्त हुआ है, तो भीतर की आत्मा को जगाकर कहो – 'मुझे अभय प्राप्त हो गया है।' उसके बाद जब तक यह शरीर रहे, तब तक दूसरों को निर्भयता की यह वाणी सुनाओ – 'तत्त्वमसि'। **''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।''** 'तुम वही ब्रह्म हो' उठो! जागो! और लक्ष्य-प्राप्ति किए बिना रुको मत।

जीवन कर्म सहज भीषण है,
उसका सब सुख केवल क्षण है।
यद्यपि लक्ष्य अदृश्य धूमिल हो,
फिर भी वीर हृदय हलचल हो।
अन्धकार को चीर अभय हो,
बढ़ो साहसी जग विजयी हो।। ○○○

(रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में प्रदत्त व्याख्यान)

पृष्ठ ३५२ का शेष भाग

जीवन में वे घटनाएँ घट रही हैं, इसलिए उसका विनाश नहीं होता है और जो उस अज्ञान की स्थिति को वास्तविक मान लेता है, उसका विनाश होता है।

इसका अभिप्राय है कि नारदजी के हृदय में जो कुछ दिखाई दे देता है, उनके मूल में वही शब्द रामायण में दिया गया है। भगवान को लगा कि नारद को यदि यह भ्रम हो गया कि मैंने विकारों को जीत लिया, मैं क्रोधरहित हूँ, वासनारहित हूँ, तो मानो वास्तविकता दिखाने के लिए और उसके बहाने संसार के व्यक्तियों को बताने के लिए कि इतने बड़े महापुरुष भी यदि थोड़े समय के लिये ऐसी भ्रान्ति पाल लें, तो उसका कितना भयानक परिणाम हो सकता है। **(क्रमशः)**

घर में शिक्षा

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनकी कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

'मूर्ख,' नरेन अपनी बहनों पर चिल्लाया। ''रुको जब तक हम तुम्हें पकड़ नहीं लेते,'' बहनों ने आंगन के चारों ओर उसका पीछा किया। जब उसने देखा कि वे उसे घेर सकती हैं, तो वह घर से बाहर निकल गया और एक नाली में कूद गया। 'बेवकूफ,' वह अपनी जीभ बाहर निकालते हुए चिल्लाया। गंदे पानी में कदम रखने से डरकर बहनें नाली के किनारे रुक गईं। नरेन ने ताली बजाई और खुशी से हँस पड़ा।

लड़कियों ने भुवनेश्वरी देवी से शिकायत करते हुए कहा, ''माँ ! नरेन हमें बुरे नामों से बुला रहा है ... उसने ये सब बुरे शब्द कहाँ से सीखे हैं?'' उनकी माँ ने उन्हें विस्मय से देखा, उसे स्कूल गये तो अभी दो ही दिन हुए हैं। उसने उन्हें वहीं से सीखा होगा। उन्होंने नरेन को बुलाया और जब वह भागा, तो उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे विश्वनाथ दत्त के कार्यालय तक ले गईं। ''अपने पिता को वे नाम बताओ, जिससे तुम अपनी बहनों को बुला रहे थे।''

''बेवकूफ, मूर्ख,'' नरेन मुस्कराया।

विश्वनाथ गम्भीर लग रहे थे। ''क्या तुम इन शब्दों का अर्थ जानते हो?'' नरेन ने अनजान बनकर सिर हिलाया।

''इस तरह की बात करना अशिष्टता है। तुमको अपनी बहनों से माफी माँगनी चाहिए।''

जब नरेन कमरे से बाहर निकला, तो भुवनेश्वरी देवी ने अपने पति से कहा, ''मैं इसे इस विद्यालय में नहीं भेजूँगी।''

''ठीक है,'' विश्वनाथ सहमत हुए, ''मैं एक अच्छे शिक्षक के बारे में जानता हूँ। नरेन और उसके चचेरे भाई कल से घर में ही पढ़ाई कर सकते हैं।''

अगले दिन सुबह ईमानदार, चश्मा पहने हुए एक आदमी आये और उन्हें पूजा-कक्ष में जाने के लिए रास्ता दिखाया गया। पाँच छोटे लड़के उनका अभिवादन करने के लिए खड़े हुए। उन्हें बैठने का इशारा करते हुए शिक्षक ने कहा, वे उन्हें वर्णमाला सिखाएँगे । ''मैं इसे पहले से ही जानता हूँ, सर,'' नरेन मुस्कराया, ''मेरी माँ ने मुझे यह सिखाया है।''

बोरुन घोष ने भौंह चढ़ाई, ''चलो, इसे सुनते हैं।''

नरेन ने एक गहरी साँस लेते हुए वर्णमाला का पाठ किया। ''अच्छा,'' बोरुन सर ने सहमति में कहा। ''हम वाक्य का अध्ययन करेंगे, लेकिन पहले मैं दूसरों को उनका पाठ पढ़ाऊँगा ।''

जब बोरुन सर नरेन को बरामदा के दूसरे हिस्से में ले गये, तो नरेन कालीन बीछे हुए फर्श पर लेट गया। बोरुन सर अवाक् रह गये। उन्होंने कहा, ''यह मेरी कक्षा है। भले ही यह तुम्हारे घर में हो। किन्तु मत सोओ।'' नरेन उठ बैठा, लेकिन जैसे ही पाठ आरम्भ हुआ, वह फिर से लेट गया और अपनी आँखें बन्द कर लीं। क्या विचित्र लड़का है ! शिक्षक ने सिर हिलाया, लेकिन जोर से पढ़ाना जारी रखा।

अगले कुछ दिनों में नरेन के प्रति बोरुन सर का क्रोध अन्दर ही अन्दर बढ़ता गया। हर बार जब वे पाठ पढ़ाते, तो उनका छोटा छात्र अपने को आरामदायक अनुभव करता और अपनी आँखें बन्द कर लेता था। अन्त में, अपने आप को नियन्त्रित करने में असमर्थ होकर उन्होंने लड़के को जोर से हिलाया। ''मेरी कक्षा में सोने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई?'' वे चिल्लाए, ''मैं तुम्हारे पिता से शिकायत करने जा रहा हूँ।''

जैसे ही नरेन बोरुन सर की पकड़ से छूट गया, दूसरे लड़के भी जल्दी वहाँ पहुँचे। नरेन ने दुखित मन से कहा, ''सर, आप गलत हैं ! मैंने आपका सब शब्द सुना है।'' बोरुन सर ने कहा, ''तो मुझे बताओ कि मैं इन दिनों तुम्हें क्या सिखा रहा हूँ।'' नरेन ने कहा, ''आप क्रियाओं के भूत, वर्तमान और भविष्य काल को पढ़ा रहे हैं ।''

शिक्षक अवाक् हो गये। नरेन के चचेरे भाइयों ने हाथों से मुँह को ढँककर हँसते हुए एक-दूसरे को देखा। ''मुझे प्रत्येक काल का एक उदाहरण दो,'' बोरुन ने कहा।

नरेन ने तुरन्त अपनी शिक्षा का प्रमाण दिया और जब बोरुन सर ने उसे घूर कर देखा, तो दूसरे लड़के जोर से बोले, ''वह बहुत बुद्धिमान है, सर ! वह पूरी रामायण और महाभारत भी जानता है !''

अपने आप को सम्भालते हुए बरुन सर ने पूछा, ''तुम अपने पाठों को इतनी अच्छी तरह से याद कैसे करते हो?''

नरेन ने उनकी ओर ध्यान से देखा, ''जब मैं अपनी आँखें बन्द करता हूँ, तो मैं सभी अन्य ध्वनियों को बन्द कर देता हूँ, ताकि केवल आपकी आवाज ही मेरे कानों में प्रवेश करे और मैं पाठ को अच्छी तरह से समझ सकूँ।''

बोरुन सर ने नरेन के घुँघराले केशों को सहलाया, ''काश मेरे सभी छात्र तुम्हारे जैसे होते !''

*   *   *

मन की शक्तियों को एकाग्र करने के सिवा अन्य किस प्रकार से संसार में ये समस्त ज्ञान उपलब्ध हुए हैं? यदि प्रकृति के द्वार पर कैसे खटखटाना चाहिए, उस पर कैसे आघात देना चाहिए, केवल यह ज्ञान हो गया, तो प्रकृति अपना सारा रहस्य खोल देती है। उस आघात की शक्ति और तीव्रता एकाग्रता से ही आती है। मानव-मन की शक्ति की कोई सीमा नहीं है। वह जितना ही एकाग्र होता है, उतनी ही उसकी शक्ति एक लक्ष्य पर केन्द्रित होती है, यही रहस्य है।

– स्वामी विवेकानन्द

तुम्हारे हृदय के मध्य में तुम्हारे इष्टदेवता बैठकर दिनभर, रातभर, हर घड़ी, तुम्हारे प्रत्येक कार्य पर दृष्टि रखे हुए हैं और ऐसा समझो कि उनकी सहमति के अतिरिक्त तुम कुछ भी नहीं कर सकती। कहीं गाड़ी से जाना चाहती हो। तब यदि प्रभु की सम्मति न हो, तो देखोगी, प्रस्थान करने से पहले गाड़ी खराब हो जाती है। इसलिए दिनभर, रातभर कभी भी अवसर मिले, श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा के चित्रों पर दृष्टि पड़े या मन में कोई उल्टी सीधी बात सता रही हो, तब मन ही मन प्रभु का नाम जपना आरम्भ कर दो। जब भी प्रभु का स्मरण हो, तभी नाम जप करो, इष्टमन्त्र का मन में जप करो, गिनतियाँ रखने की आवश्यकता नहीं।

अपने आप को श्रीरामकृष्ण के हाथों का यन्त्र समझो, फिर अपना जीवन सार्थक रहा या व्यर्थ, इन बातों की चिन्ता तुम्हें नहीं होगी। कहो, 'मैं तो तुम्हरो दास, जनम जनम को।''

– स्वामी गहनानन्द जी महाराज

भजन एवं कविता

चल शिव के धाम काँवरिया

आनन्द कुमार तिवारी 'पौराणिक'

हर, हर, शिव, शिव, रट रे भईया ।
चल, चल, शिव के धाम काँवरिया ।।
रिमझिम, रिमझिम बरसे जलधार ।
सावन महिमा, दिन सोमवार।।
व्रत का दिन, तन-मन निर्मल है ।
ताम्रपात्र में गंगाजल है ।।
भोलेनाथ हैं जग के रखईया ।
चल, चल, शिव के धाम काँवरिया ।।

कंकड़, काँटे, पर्वत, जंगल।
राह ऊबड़-खाबड़, दलदल।।
बाधाओं से मत घबराना ।
दृढ़ संकल्पों से बढ़ते जाना ।।
रक्षक हैं, डम डम डमरू बजईया ।
चल, चल, शिव के धाम काँवरिया ।।

प्रभु दर्शन कर और माथा टेक ।
कर दुग्ध, दधि, गंगाजल अभिषेक।।
धूप, दीप, बिल्वपत्र और चन्दन ।
श्रीफल, पुष्प, नैवेद्य अर्पण।।
शिव ही पार करेंगे नईया ।
चल, चल, शिव के धाम काँवरिया ।।

नमन करो उन वीरों को

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

हम सब के सुख-शान्ति हेतु, जिनने अनमोल जवानी दी ।
नमन करो उन वीरों को, जिनने अपनी कुर्बानी दी ।।

अपनी जान हथेली पर ले, खड़े रहे मैदान में,
लाठी-गोली-बम खाकर भी, अड़े रहे तूफान में।
जिनने अपने शुद्ध रक्त से, लिखकर एक कहानी दी,
नमन करो उन वीरों को, जिनने अपनी कुर्बानी दी ।।

अपने सुख की चाह न जिनको, ऐसे त्यागी वीर थे,
सीना था फौलादी इनका, हाथों में शमशीर थे ।
जिनके नस में दौड़ रही, बारूदी कोई रवानी थी,
नमन करो उन वीरों को, जिनने अपनी कुर्बानी दी ।।

हथकड़ियाँ थे जेवर जिनके, कोड़े ज्यों उपहार थे,
'वन्दे मातरम्' महामन्त्र था, जख्म तिलक-श्रृंगार थे ।
कारागृह ही बनी हुई, जैसे उनकी राजधानी थी,
नमन करो उन वीरों को, जिनने अपनी कुर्बानी दी ।।

लाख मुसीबत हँसकर झेला, उफ तक भी बिन कहे हुए,
फाँसी के फंदे को चूमा, अश्रु के बिन बहे हुए ।
उनके मनमन्दिर में जैसे, बैठी स्वयं भवानी थी ,
नमन करो उन वीरों को, जिनने अपनी कुर्बानी दी ।।

माता हित सर्वस्व लुटाकर, चले गये संसार से,
प्राणों का बिन मोल लिए ही, चले गये बाजार से ।
विजयी विश्व तिरंगे की, हम सब को अमिट निशानी दी,
नमन करो उन वीरों को, जिनने अपनी कुर्बानी दी ।।

श्रीरामकृष्ण-गीता (६१)

(द्वादश अध्याय १२/९)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

मरुवासी स भक्तस्तु किञ्चिद् व्यामोहितस्तदा।
सम्भूयानेन वाक्येन प्रभुदेवमुवाच ह।।१०६।।

– उन मारवाड़ी भक्त ने थोड़ा विस्मित होकर श्रीरामकृष्ण से कहा।

ईषदपरिपक्वस्तु चाद्यापि विद्यते भवान्।
कथमिति तदा देवः पप्रच्छ प्रतिभाषणम्।।१०७।।

– 'आप अभी थोड़े कच्चे हैं'। इसके उत्तर में ठाकुर ने पूछा – ''कैसे हूँ'?

मरुवास्युवाच

अत्युच्चभावसंस्थाने महतः पुरुषस्य वै।
किं त्याज्यं किमुत ग्राह्यमुभयं तु समं भवेत्।।१०८।।

– मारवाड़ी ने कहा – महापुरुषों की अत्युच्च भावावस्था होने पर क्या त्याज्य और क्या ग्राह्य है, दोनों समान हो जाते हैं।

कोऽपि किंचन गृह्णाति को वा यच्छति किञ्चन।
न क्षोभो नापि सन्तोषस्तदीये मानसे भवेत्।।१०९।।

– कोई कुछ दिया या कुछ लिया, उससे उनके चित्त में सन्तोष या क्षोभ नहीं होता है।

श्रीमहाराज उवाच

तच्छ्रुत्वा स्मितहास्येन प्रभुस्तं समबोधयत्।
पश्य वत्स यथादर्शे केन मलेन दूषिते।
मुखबिम्बं न दृश्येत् तस्मिन्न सम्यक् स्फुटं किल।।११०।।

– श्रीमहाराज ने कहा – ठाकुर यह बात सुनकर थोड़ा हँसकर उसे समझाने लगे – देखो बच्चा ! जिस प्रकार दर्पण मैला रहने पर मुँह ठीक से नहीं दिखता है।

स्तब्धीभूतं मनो यद्वै तन्मनसि पुनस्तथा।
काम-कांचन कालुष्यं नैव भुक्तं कदाचन।।१११।।

– उसी प्रकार जो मन शुद्ध है, उस शुद्ध मन में कामिनी-कांचन का दाग पड़ना ठीक नहीं है।

मरुवास्युवाच

तद् भद्रं भगवंस्तर्हि सेवको भवतोऽधुना।
सेवार्थमर्थमेतं वै गृह्णातु हृदयस्तव।।११२।।

मारवाड़ी भक्त ने कहा – यह तो अच्छी बात है! हृदय जो अभी आपकी सेवा करता है, न हो, तो उसके नाम से ही आपकी सेवा के लिए रुपये जमा रहें।''

श्रीरामकृष्ण उवाच

तदपि च भवेन्नैव नेदमपि तु संगतम्।
यतस्तत् सन्निधाने स्याद् धनमिदं हि रक्षितम्।।११३।।
अमुस्मै देहि चेत् किञ्चदिति वदामि कर्हिचित्।
व्ययं चेत् कर्त्तुमिच्छेयं कस्मिन्नर्थे स्वयञ्च वा।।११४।
तर्हि नेच्छति दातुं चेत् सोऽभिमानः स्वतो भवेत्।
मनसि मे मदर्थं वै दत्तमेतत्तु नैव ते।।११५।।

– उसके उत्तर में ठाकुर ने कहा – नहीं, वह भी नहीं होगा। क्योंकि रुपये उसके पास रहने से यदि मैं कभी उससे कहूँ कि अमुक को कुछ रुपये दे दो, या अन्य किसी वस्तु के लिये मुझे रुपये व्यय करने की इच्छा हो और यदि वह रुपये न देना चाहे, तो मेरे मन में स्वाभाविक रूप से यह अहंकार होगा कि वह तो तुम्हारा नहीं है, वह तो मेरे लिये दिया है। इसलिए यह भी ठीक नहीं है।

श्रीमहाराज उवाच

श्रुत्वा प्रभोर्वाक्यमिदं धनाढयो
भक्तः स चातीव चमत्कृतोऽभूत।
सन्दृश्य च त्यागमदृष्टपूर्वं
प्रीतः स्वभूमिं सुतरां प्रतस्थौ।।११६।।

– श्रीमहाराज ने कहा – उन धनी मारवाड़ी भक्त ने ठाकुर के इस अद्भुत त्याग को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने स्थान को प्रस्थान किया। **(क्रमशः)**

स्वतन्त्रता के मौन नक्षत्र

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

स्वाधीनता-संग्राम केवल कुछ प्रसिद्ध नामों की कथा नहीं है; वह असंख्य ज्ञात-अज्ञात आत्माओं की तपश्चर्या का परिणाम है। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर कुछ नाम उकेरे गए, परन्तु असंख्य ऐसे भी थे, जिनकी जीवनाग्नि ने राष्ट्रदीप को प्रज्वलित रखा, किन्तु उनकी कीर्ति का प्रकाश व्यापक समाज तक न पहुँच सका। ये सेनानी त्याग, धैर्य और आत्मबलिदान की सजीव प्रतिमाएँ हैं। उनके जीवन-प्रसंग आधुनिक युवा-पीढ़ी के लिए साहस और निष्ठा के अप्रतिम उदाहरण हैं।

वीर नारायण सिंह : आदर्शों की अमर ज्योति

छत्तीसगढ़ की धरती के अमर सपूत वीर नारायण सिंह एक जमींदार परिवार से थे। उनका जन्म सन् १७९५ में वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदा बाजार जिले के सोनाखान ग्राम में एक बिंझवार (बंज्हवार/बिंझाल) परिवार में हुआ। उनके पिता रामसाय (रामसाई) स्थानीय जमींदार थे। पिता के निधन के उपरान्त नारायण सिंह ने सोनाखान जमींदारी का दायित्व सँभाला। वे स्वभाव से अत्यन्त साहसी, न्यायप्रिय और करुणामय थे। लोक कथाओं के अनुसार, एक नरभक्षी बाघ से ग्रामवासियों की रक्षा कर उन्होंने असाधारण वीरता का परिचय दिया, तभी से लोग उन्हें सम्मानपूर्वक 'वीर' कहकर सम्बोधित करने लगे। उनका जीवन केवल शौर्य का नहीं, बल्कि जन-सेवा और सामाजिक न्याय का भी प्रतीक था।

१८५६ का भीषण अकाल और लोककल्याण का निर्णय

सन् १८५६ में छत्तीसगढ़ क्षेत्र भीषण अकाल से पीड़ित हुआ। अन्न के अभाव में जन-जीवन संकटग्रस्त हो गया। अंग्रेजी शासन के संरक्षण में कुछ साहूकारों ने अन्न का कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर मूल्य बढ़ा दिए। भूखी जनता तड़प रही थी और अँग्रेजी शासन इस शोषण पर मौन था। किन्तु उनका हृदय कृषक-जन की पीड़ा से व्यथित था। ऐसी विषम परिस्थिति में वीर नारायण सिंह ने अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहसिक निर्णय लिया। उन्होंने ग्रामवासियों को संगठित किया और साहूकारों के गोदामों से संग्रहीत अन्न निकलवाकर निर्धन एवं भूख से व्याकुल जनता में वितरित किया। यह कार्य अँग्रेजी सत्ता की दृष्टि में विद्रोह और अपराध

था। उन्हें गिरफ्तार किया गया। परन्तु लोकमानस की दृष्टि में यह धर्म और मानवता का पालन था। ब्रिटिश प्रशासन ने उन्हें 'राज-विरोधी' घोषित कर गिरफ्तार कर लिया और रायपुर कारागार में बन्द कर दिया। किन्तु जनसमर्थन इतना प्रबल था कि वे कुछ समय पश्चात् कारागार से निकल भागे। इसके उपरान्त उन्होंने कुरुपाट की पहाड़ियों में एक लघु सशस्त्र दल संगठित कर अँग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष प्रारम्भ किया। उनका उद्देश्य व्यक्तिगत सत्ता नहीं, अपितु जनमानस के अधिकारों की रक्षा था। दुर्भाग्यवश विश्वासघात के कारण वे पुन: पकड़े गए।

बलिदान : १० दिसम्बर, १८५७

१८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की ज्वाला जब देश के विविध भागों में प्रज्वलित थी, उसी काल में १० दिसम्बर १८५७ को रायपुर के जयस्तम्भ चौक पर उन्हें सार्वजनिक रूप से फाँसी दी गई। उनकी यह शहादत छत्तीसगढ़ के इतिहास में प्रथम स्वतन्त्रता-बलिदान के रूप में अंकित हुई। वे इस प्रदेश के प्रथम शहीद माने जाते हैं।

स्मृति और सम्मान

वीर नारायण सिंह की स्मृति आज भी छत्तीसगढ़ की

जन-चेतना में जीवन्त है। रायपुर स्थित 'शहीद वीर नारायण सिंह अन्तर्राष्ट्रीय क्रिकेट स्टेडियम' उनके नाम पर स्थापित है। भारत सरकार ने उनके सम्मान में डाक-टिकट जारी किया। छत्तीसगढ़ शासन द्वारा 'शहीद वीर नारायण सिंह सम्मान' प्रदान किया जाता है, जो जनजातीय उत्थान और सामाजिक सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु दिया जाता है। प्रत्येक वर्ष १० दिसम्बर को उनके बलिदान-दिवस पर विशेष कार्यक्रम, मेले और श्रद्धांजलि सभाएँ आयोजित की जाती हैं, विशेषत: सोनाखान क्षेत्र में।

वीर नारायण सिंह का जीवन यह सिद्ध करता है कि सच्ची देशभक्ति केवल शस्त्र उठाने में नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध खड़े होने में है। उन्होंने सत्ता के भय से ऊपर उठकर भूखी जनता की सेवा को ही अपना धर्म माना। उनकी गाथा छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना का आधारस्तम्भ है। साहस, समानता और मानव-सेवा के जिन आदर्शों को उन्होंने जिया, वे आज भी समाज को प्रेरित करते हैं। उनका जीवन हमें स्मरण कराता है कि जब भी अन्याय अपने पाँव पसारता है, तब कोई न कोई वीर नारायण सिंह उठ खड़ा होता है – और इतिहास में अमर हो जाता है।

तिलका मांझी : आदिवासी अस्मिता का प्रथम ज्वालामुखी

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब अँग्रेजी सत्ता अपनी जड़ें सुदृढ़ कर रही थी, तब बिहार–झारखण्ड के वनांचलों में तिलका मांझी ने विद्रोह का बिगुल फूँका। वे संथाल समुदाय के वीर पुत्र थे। अँग्रेज अधिकारी ऑगस्टस क्लिवलैण्ड के अत्याचारों से पीड़ित जनजातीय समाज को संगठित कर उन्होंने सशस्त्र संघर्ष प्रारम्भ किया। तिलका मांझी ने तीर से अँग्रेज अधिकारी को मार गिराया। यह घटना १७८४ के आसपास की मानी जाती है – जब देशव्यापी संग्राम का स्वरूप भी स्पष्ट न था। अन्तत: वे पकड़े गए। उन्हें घोड़े से बाँधकर घसीटा गया और भागलपुर में फाँसी दे दी गई। उनका बलिदान यह उद्घोष करता है कि स्वाधीनता की चेतना भारतभूमि में बहुत पहले से प्रवाहित थी।

तारकनाथ दास : विदेश में रहकर स्वाधीनता का शंखनाद

तारकनाथ दास उन क्रान्तिकारियों में से थे जिन्होंने विदेश की भूमि से भारत की स्वतन्त्रता का स्वर बुलन्द किया। वे अमेरिका में रहकर भारतीय छात्रों और प्रवासियों को संगठित करते रहे। 'गदर आन्दोलन' से भी उनका सम्बन्ध रहा। उन्होंने लेखन, भाषण और संगठन-निर्माण के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश साम्राज्य की आलोचना की। उनका जीवन इस तथ्य का साक्षी है कि स्वाधीनता-संग्राम केवल रणभूमि में नहीं, विचार-भूमि में भी लड़ा गया।

उपसंहार

ये सभी सेनानी उस दीपशिखा के समान हैं, जो स्वयं जलकर राष्ट्र को आलोकित करती है। उनका साहस केवल शारीरिक पराक्रम नहीं था; वह नैतिक दृढ़ता, आत्मबल और कर्तव्य-निष्ठा का अद्वितीय संगम था। आज जब युवा-पीढ़ी त्वरित सफलता और क्षणिक प्रसिद्धि के आकर्षण में उलझ जाती है, तब इन अमर आत्माओं का जीवन यह स्मरण कराता है कि महानता का मार्ग त्याग और तपस्या से होकर जाता है। राष्ट्र की स्वतन्त्रता हमें विरासत में मिली धरोहर है; किन्तु उसका संरक्षण और संवर्धन हमारा वर्तमान कर्तव्य है। यदि हम इन मौन बलिदानियों के आदर्शों – साहस, संकल्प, अनुशासन और नि:स्वार्थ समर्पण – को आत्मसात् करें, तो वही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। भारत की माटी आज भी उन अमर शहीदों की चरण-रज से पावन है। आवश्यकता केवल इतनी है कि हम इतिहास के इन मौन नक्षत्रों को पहचानें, उनके प्रकाश से अपने जीवन-पथ को आलोकित करें। राष्ट्र-निर्माण की अखण्ड साधना में स्वयं को समर्पित करके राष्ट्रनिर्माण केवल राजनेताओं का कार्य नहीं; वह प्रत्येक जाग्रत आत्मा का दायित्व है। सेनानियों का साहस आडम्बररहित था, उनका त्याग प्रतिफल-विहीन था, और उनका संकल्प अडिग था। राष्ट्र के लिए जिया गया जीवन कभी नष्ट नहीं होता; वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रेरणा का अक्षय स्रोत बनकर प्रवाहित होता रहता है। यही उन अमर बलिदानियों के जीवन का शाश्वत सन्देश है। यह त्याग और बुद्धिमत्ता का अद्वितीय उदाहरण है। उनका नाम इतिहास के मुख्य प्रवाह में प्राय: विस्मृत रहा, किन्तु उनका योगदान रणचातुर्य और आत्मबलिदान का उज्ज्वल प्रतीक है। आज आवश्यकता है कि हम इतिहास के इन मौन नक्षत्रों को पुन: स्मरण करें। जब युवा-पीढ़ी इन जीवनगाथाओं को आत्मसात् करेगी, तब उसमें भी वही निर्भीकता, वही दृढ़निश्चय और वही आत्मबल जाग्रत होगा। OOO

भगवान के नाम-जप का विज्ञान

स्वामी त्रिभुवनदास जी महाराज

(गतांक से आगे)

कर्मों से नाम जप की विशेषता

शंका – पापों की मात्रा के अनुसार नाम-जप की संख्या का विधान मानने पर तो नाम-जप भी अन्य पुण्य कर्मों के अनुष्ठान के समान ही वाणी से किया जाने वाला पुण्यकर्मानुष्ठान ही सिद्ध होगा, ऐसी दशा में नाम में पुण्यकर्म से क्या विशेषता रह जायगी?

समाधान – शास्त्रीय पुण्यकर्मानुष्ठान में जाति, देश, काल आदि के नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है। इन नियमों का पालन किये बिना पुण्यकर्मानुष्ठान पापनाशक न होकर पाप के उत्पादक भी हो सकते हैं। किंतु भगवन्नाम-जप में जाति आदि के नियम-पालन की आवश्यकता नहीं, शास्त्रों में स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज जाति के भी लोग जहाँ-तहाँ भगवन्नाम-संकीर्तन करते रहते हैं, वे भी समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। नाम-जप में देश, काल, शौचाचार आदि का नियम नहीं। यज्ञ, दान, पुण्यस्नान में और (विधिपूर्वक अनुष्ठान) सत्-जप के लिये शुद्ध कालादि की आवश्यकता है, भगवन्नाम-जप में नहीं। चलते, फिरते, खड़े रहते, ऊँघते, खाते, पीते 'कृष्ण-कृष्ण' ऐसा संकीर्तन करके मनुष्य पापरूपी केंचुल से छूट जाता है। अपवित्र हो या पवित्र, सभी अवस्थाओं में कमलनयन भगवान का स्मरण जो करता है, वह बाहर-भीतर पवित्र हो जाता है –

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्।।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्।
न देशकालनियमः शौचाचारविनिर्णयः।।
कालोऽस्ति यज्ञदाने वा स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते।।
गच्छस्तिंष्ठन् स्वपन्वापि पिबन् भुञ्जन्स्वपंस्तथा।
कृष्ण कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात्।।
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

शंका – सत्-जप में काल का नियम है – **'कालोऽस्ति सज्जपे'** ऐसा जब स्पष्ट कहा है, तब नाम जप में कालादि का नियम नहीं, ऐसा कहना परस्पर-विरुद्ध है।

समाधान – सज्जपे यहाँ जप में 'सद्' शब्द लगाकर यह बताया है कि साधारण रीति से नाम जप में नहीं, किन्तु विधिपूर्वक अनुष्ठान रूप में किये जाने वाले सत्-जप में ही कालादि नियम की अपेक्षा है। इसी अभिप्राय से तुलसीदास जी ने कराल-कलिकाल में जप को भी साधन नहीं माना –

एहिं कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।

(रा.च.मा. ७/१२८/५)

कुछ विद्वानों का कहना है कि गुरु द्वारा दिये गये मन्त्रविशेष का स्नान आदि से पवित्र होकर पवित्र देशकाल में जप करने का विधान है, उसी को यहाँ 'सज्जप' शब्द से कहा है, सर्वसाधारण भगवन्नाम को नहीं। यही कारण है कि इस रहस्य को जानने वाले गुरुजन अपने शिष्य को गुरुमन्त्र के अतिरिक्त सर्व-अवस्था में जप करने योग्य छोटा-सा भगवन्नाम अलग से बताते हैं।

नाम-जप और उससे फल में भेद

विधिपूर्वक किये गये यज्ञ से नाम-संकीर्तनरूप यज्ञ दस गुना श्रेष्ठ है और उपांशु जप सौ गुना तथा मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ है –

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टे दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्त्रो मानसः स्मृतः।।

(मनुस्मृति २।८५)

इस श्लोक में मनु महाराज ने नाम-जप के वाचिक, उपांशु और मानसिक–ये तीन भेद बताये हैं। जो जप वाणी से इतनी जोर से बोलकर किया जाता है कि उसे दूसरे लोग भी सुन सकते हैं, उस जप को वाचिक जप कहते हैं, जो जप होंठ हिलाते हुए इतने मन्द स्वर में किया जाता है कि दूसरे लोग सुन नहीं सकते, जप करने वाला ही सुन पाता है, उसे उपांशु जप कहते हैं। जो जप केवल मन से

ही किया जाता है, उसे मानसिक जप कहते हैं। वाचिक से उपांशु और उपांशु से मानसिक जप का दस गुना अधिक फल बताने का कारण यह है कि इनमें उत्तरोत्तर मन का सम्बन्ध भगवन्नाम से अधिक रहता है और संसार से सम्बन्ध अधिक कटता है।

देखिये, बातचीत करते हुए संसारी मनुष्य संसार के कार्य और संसार के पदार्थों का चिन्तन जैसे करते रहते हैं, वैसे ही अभ्यासशील साधक वाणी से नाम-संकीर्तन करते हुए संसार के कार्य तथा संसार के पदार्थों का चिन्तन कर सकता है, किंतु पूर्णतया संसार के कार्य में संलग्न हो जाने पर उपांशु जप बन्द हो जाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि उपांशु जप तभी हो सकता है, जब वाचिक जप की अपेक्षा संसार का कार्य कम किया जाये और भगवन्नाम में मन अधिक लगाया जाये। इस विवेचन से यह भी शिक्षा मिलती है कि संसार का अधिक कार्य करते हुए वाचिक जप ही करना चाहिये। इस धोखे में नहीं रहना चाहिये कि उस समय भी मेरा उपांशु या मानसिक जप चलता रहता है। संसार का कार्य करने की बात तो दूर रही, संसार के पदार्थ का मन से चिन्तन होते रहने पर भी मानसिक जप वैसे ही नहीं हो सकता, जैसे वाणी से अन्य सांसारिक बातें करते समय वाचिक नाम-जप नहीं किया जा सकता। मन से मानसिक जप तो तभी होगा, जब मन में भगवन्नाम को छोड़कर अन्य किसी का चिन्तन न हो। ऐसी दशा में यह सिद्ध हो जाता है कि उपांशु जप की अपेक्षा भी मानसिक जप में संसार के सम्बन्ध का अधिक त्याग और भगवन्नाम से अधिक सम्बन्ध होता है। कारण उपांशु जप में भी संसार का कुछ कार्य तथा सांसारिक पदार्थ का चिन्तन हो सकता है, मानसिक जप में नहीं, अत: इसका हजार गुना फल बताना ठीक ही है।

भ्रम निवारण

'मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ है' इसे पढ़-सुनकर अधिक फल के लोभ से मानसिक जप के अनधिकारी साधक भी 'मानसिक जप ही हम करेंगे' ऐसा निश्चय करके उपांशु और वाचिक जप का परित्याग कर देते हैं, उनसे जब हम यह पूछते हैं कि जब आप मानसिक जप करने बैठते हैं, तब आपका मन भगवन्नाम को छोड़कर अन्य का चिन्तन तो नहीं करता? तो वे कहते हैं कि शायद घण्टे भर में सब मिलाकर २-४ मिनट भगवन्नाम का चिन्तन होता हो, बाकी समय तो अन्य का ही चिन्तन चलता रहता है। यह उत्तर सुनकर हम उनसे पुन: प्रश्न करते हैं कि एक व्यक्ति को आपने मन्दिर में ४ से ५ बजे तक बैठने को कहा, उसी समय वह बाजार में भ्रमण करता हुआ आपको मिला। ऐसी दशा में उस व्यक्ति द्वारा हजार बार शपथ करके कहने पर भी जब आप यह नहीं मानते कि वह व्यक्ति ४ से ५ बजे तक मन्दिर में बैठा रहा, तब ५६-५८ मिनट अन्य का चिन्तन मन करता रहा, ऐसा स्वयं अनुभव करके भी यह कैसे मानते हैं कि मन एक घण्टे मानसिक जप करता रहा? अधिक लाभ के लोभ से तो आप वाचिक, उपांशु जप के लाभ से भी वंचित रह गये। इसके विपरीत एक साधक झाँझ-करताल बजाकर वाणी द्वारा उच्च स्वर से नाम-संकीर्तन में इतना तन्मय हो जाता है कि बाजे-गाजे के साथ कोलाहल करती हुई पास से निकल कर जाती हुई बारात का भी पता उसे नहीं लगता। अल्प फलप्रदायक कहे जाने वाले ऐसे वाचिक जप का मानसिक जप से कम फल नहीं होता। इसका एकमात्र कारण यही है कि जिस जप या साधना द्वारा साधक के मन का भगवान से अधिक सम्बन्ध जुड़ता हो और संसार से सम्बन्ध कटता हो, वही जप या साधना श्रेष्ठ मानी जाती है। साधनाओं में स्वरूपतः श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता नहीं होती।

नाम-जप में रस न आने का कारण

शंका – हमें श्रद्धापूर्वक निष्काम भाव से नाम-जप करते हुए २० वर्ष हो गये, तो भी अभी तक नाम-जप में रस नहीं आता, भगवान में तथा उनके नाम में प्रीति नहीं हुई तथा संसार की आसक्ति ज्यों-की-त्यों बनी हुई है, इसका क्या कारण है?

समाधान – आप अपनी वस्तुस्थिति को ठीक-ठीक नहीं समझते, इसलिये ऐसी शंका करते

हैं। अनेक सच्चे साधक इसी प्रकार की शंका करते हैं। जब हम उनसे पूछते हैं कि प्रारम्भ में जब आपने नामजप करना शुरू किया था, तब जैसे थोड़ी देर में ही मन उकता जाता था, क्या वैसे अब भी उकता जाता है? क्या प्रथम की तरह भगवान और उनका नाम-स्मरण तथा उच्चारण किये बिना दो-चार दिन भी आप रह सकते हैं? संसार के कार्य तथा पदार्थ का परित्याग करके १-२ दिन के लिये भी आप सत्संग-संकीर्तन आदि में नहीं जाते थे, क्या आज भी वैसी ही स्थिति बनी हुई है? मेरे इन सभी प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' के रूप में जब वे देते हैं, तब हम कहते हैं – इससे यह सिद्ध हो गया कि आपको ऐसी शंका अपनी वस्तुस्थिति को न समझने के कारण ही होती है। कारण ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि कोई सच्चा साधक २० वर्षों तक श्रद्धापूर्वक निष्काम भाव से नाम-जप या अन्य कोई साधना करे और कुछ भी लाभ न हो।

प्रश्न – आपका कथन ठीक है, तो भी विशेष उल्लेखनीय लाभ नहीं हुआ, इसका कारण क्या है?

उत्तर – पापकर्म के दो परिणाम होते हैं, एक तो पापकर्मों से अशुभ अदृष्टरूप पाप उत्पन्न होता है, जिससे कालान्तर या जन्मान्तर में दुःखरूप फल भोगना पड़ता है। दूसरा, बार-बार पापकर्मों को करने से उनके संस्कार दृढ़ होकर पाप-वासना हृदय में जम जाती है। नामजप के भी दो परिणाम होते हैं। एक तो नामजप से पाप का नाश होता है। दूसरा बार-बार नामजप करने से नामजप के संस्कार दृढ़ होकर नामवासना हृदय में जम जाती है। जब नाम-वासना हृदय में जम जाती है, तभी पाप-वासना का विनाश होता है। इसके बाद भी श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक नामजप करते रहने पर नामजप में रस आने लगता है और भगवान में भक्ति तथा भगवान के नाम में विशेष प्रीति होने लगती है, जिससे संसार की आसक्ति मिटने लगती है, ऐसा क्रम है। अत: जिन लोगों के पापकर्म जितने अधिक होते हैं या पाप-वासना जितनी अधिक सुदृढ़ होती है, उसके अनुरूप नाम-जप तथा नाम-वासना सुदृढ़ होती है, उसके अनुरूप नाम-जप तथा नाम-वासना सुदृढ़ होने पर ही उनका विनाश होता है, इसीलिये किसी को अल्पकाल में एवं किसी को दीर्घकाल में लाभ प्रतीत होता है।

भगवानरूप अलौकिक शब्द में तथा भगवान के अलौकिक दिव्य रूपादि में ही नहीं, किंतु लौकिक शब्द-रूपादि विषयों में भी तभी रस (आनन्द) आता है, जब मन-इन्द्रियाँ उनमें तन्मय हो जाती हैं। तन्मयता की योग्यता जन्मान्तर में या इस जन्म में सम्पादित अभ्यास तथा सात्त्विक गुण की तारतम्यता के कारण प्रत्येक व्यक्ति में न्यूनाधिक होती है। यही कारण है कि लौकिक अतिप्रिय शब्द-रूपादि विषयों में भी मनुष्य को एक साथ दीर्घकाल तक आनन्द नहीं आता, अतः भगवान के नाम-रूपादि में दीर्घकाल तक रसास्वादन के लिये धैर्यपूर्वक क्रमशः तन्मयता की योग्यता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिये।

नाम-जप में मन स्थिर क्यों नहीं होता?

प्राय: नाम-जप करने वाले यह प्रश्न किया करते हैं कि श्रद्धापूर्वक भी नाम-जप करते समय मन स्थिर क्यों नहीं होता? इस प्रश्न का उत्तर प्राय: सन्त यही देते हैं कि नामी या नाम में प्रीति न होने के कारण मन स्थिर नहीं होता। अपने उत्तर की सत्यता सिद्ध करने के लिये वे कहते हैं कि देखो, तुम्हारी प्रीति पुत्र, पैसा और प्रतिष्ठा में है, इनमें तुम्हारा मन लग जाता है या नहीं? अनुभूतिमूलक युक्तियुक्त उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ता को तत्काल तो बहुत संतोष हो जाता है, परंतु स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है क्योंकि १०-२० वर्ष बीत जाते हैं, फिर-फिर उसी प्रश्न का सत्य उत्तर पाने के लिए ऐसा हो जाता है? इसका उत्तर युक्ति आदि से देने की आवश्यकता नहीं, जिसकी पुत्र आदि जिस पदार्थ में प्रीति हो, उस पदार्थ को नेत्रों के सम्मुख रखकर उसी में मन स्थिर करके देखे। तब वह यही उत्तर देगा कि घण्टे-दो-घण्टे की तो बात ही क्या, ५-१० मिनट भी ऐसी स्थिति नहीं रही कि उस प्रीति के आस्पद पदार्थ में ही मन स्थिर रहा हो, बीच में किसी अन्य पदार्थ पर न गया हो। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो जाता है कि जिस पदार्थ में प्रीति ही नहीं, किन्तु अतिप्रीति है, उसमें भी मन स्थिर नहीं होता। अत: मन की स्थिरता के लिये प्रीति का होना मात्र पर्याप्त नहीं, इसके लिये तो जहाँ-जहाँ मन जाये, वहाँ-वहाँ से उसे खींचकर प्रेमास्पद में लगाने का अभ्यास भी अपेक्षित है। यही कारण है कि गीता तथा योगसूत्र में मन का निग्रह करने के लिये निरन्तर दीर्घकालपर्यन्त अभ्यास करना आवश्यक बताया है।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

(गीता ६।३५, २६)

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।
स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।

(योगसूत्र १।१२, १४)

ऐसा होने पर भी इतना अवश्य मानना होगा कि जिस पदार्थ में प्रीति होती है, उसमें अभ्यास द्वारा मन स्थिर करने में वह प्रीति सहायक होती है। इसलिये मन स्थिर करने के लिये आलम्बन का विधान करते समय अपने को जो अभिमत हो अर्थात् जिसमें प्रीति हो, जो रुचिकर हो, ऐसा आलम्बन लेने का विधान योगसूत्रकार ने किया है – **यथाभिमतध्यानाद्वा।**' (योगसूत्र १।३९)

इसी दृष्टि से सन्तजन प्रीति को मन की स्थिरता हेतु कह देते हैं, परंतु पूर्ण सत्य उत्तर यह है कि प्रीति के साथ-साथ निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यास के बिना मन स्थिर नहीं होता। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि नाम-जपजन्य सुख सात्त्विक सुख है। सात्त्विक सुख प्रारम्भ में तो विषतुल्य अरुचिकर ही होता है, इसमें अभ्यास द्वारा ही रमण अर्थात् रसास्वादन होता है, ऐसा गीता में कहा है –

अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।।
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।

(गीता १८।३६-३७)

सारांश

इस कराल-कलिकाल में विविध विधानों से युक्त अनुष्ठान करना सम्भव न होने के कारण देश, काल, जाति आदि विधान-निरपेक्ष नाम-जप ही कल्याण का मुख्य साधन है। नाम-जप में श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयता की परम आवश्यकता है, अन्यथा इनका विधान करने वाले शास्त्रवचनों से विरोध होता है। नामापराधप्रतिपादक शास्त्रवचनों की पर्यालोचना करने पर श्रद्धा की नहीं किंतु अन्य शास्त्रीय विधि-निषेध पालन की आवश्यकता भी सिद्ध होती है। पूर्व के पाप और पाप-वासना के तारतम्य के अनुसार नाम-जप और नाम-वासना की सुदृढ़ता होने पर ही उनका सम्यक् विनाश होता है और इसके बाद ही भगवान में विशुद्ध भक्ति होती है। वाचिक, उपांशु, मानसिक जपों में जिस प्रकार के जप से संसार का सम्बन्ध अधिक कटता हो और भगवान में अधिक सम्बन्ध जुड़ता हो, वही जप श्रेष्ठ है। नाम-जप में मन को स्थिर करने के लिये श्रद्धा और प्रीति के साथ-साथ निरन्तर दीर्घकालपर्यन्त अभ्यास की भी आवश्यकता होती है। ○○○ **(समाप्त)** (कल्याण से साभार)

कविता

मानव ! प्रभु के गुण गाते न क्यों तुम

संत पथिक जी

मानव! प्रभु के गुण गाते न क्यों तुम ।
सत् की शरण में अब आते न क्यों तुम ।।।
जिनको तुम अपना समझे हो,
सदा काम ये आ न सकेंगे ।
गुरु विवेक बिन भवबंधन से,
कोई तुम्हें छुड़ा न सकेंगे ।
मन का मोह मिटाते न क्यों तुम,
मानव! प्रभु के गुण गाते न क्यों तुम ।।
जैसा भी चिन्तन होता है,
चित्त उसी मय बन जाता है।
जिसकी चाह प्रबल होती है,
प्राणी उसको ही पाता है ।
सत्य से प्रेम बढ़ाते न क्यों तुम,
मानव! प्रभु के गुण गाते न क्यों तुम ।।
जिसकी सत्ता में सब प्राणी,
इच्छित सुख पाते रहते हैं ।
जिसकी याद दिलाने के हित,
अगणित दुख आते रहते हैं ।
दुख से लाभ उठाते न क्यों तुम,
मानव! प्रभु के गुण गाते न क्यों तुम ।।
काम, क्रोध, मद, अहंकार से,
जिसका हृदय नहीं जलता है।
भोगी बनकर कौन जगत् में,
अपने हाथ नहीं मलता है।
'पथिक' त्याग अपनाते न क्यों तुम।
मानव! प्रभु के गुण गाते न क्यों तुम ।

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो रामकृष्ण शुभ बेलतला में, तन्त्र साधनाचार करैं ।
जो पंचतपा-साधना कर्म से, सहन-शक्ति -संचार करैं ।
जो परिव्राजक ईश्वर-निर्भर हो, देश-विदेश विहार करैं ।।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९१।।
जो रामकृष्ण बलराम भक्त के, घर भोजन बहुबार करैं ।
जो श्यामपुकुर-काशीपुर में, पति-सेवा-कर्म उदार करैं ।
जो अति प्रतिकूल परिस्थिति में भी, गुरु-सेवा साभार करैं ।।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९२।।
जो दैहिक रोग निमित्त बनाकर, शिष्य-संघ तैयार करैं ।
जो कठिन साधना-सेवा द्वारा, मन को सबल अपार करैं ।
जो भक्तों-मित्रों को गुरु-सेवा, में उद्‌बुद्ध अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९३।।
जो भक्तप्रवर बलराम के घर, शुभ गमन शताधिक बार करैं ।
जो रामकृष्ण शुभनाम प्रिया हो, सेवा-कर्म उदार करैं।
जो रामकृष्ण को सर्वधर्म-चिद्‌घन विग्रह स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९४।।
जो भक्त गिरीष घोष की गाली, भी सहर्ष स्वीकार करैं ।
जो ग्राम्य वधू लोकापवाद को, सहन विशेष प्रकार करैं ।
जो परिव्राजक निन्दा-स्तुति, सुनते जग सुखद विहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९५।।
जो मास्टर के संग विद्यासागर, से शुभ मिलन विशेष करैं ।
जो मातृप्रेम से पवित्रता-सेवामय हृदय प्रदेश करैं ।।
जो वेदमूर्ति श्रीरामकृष्ण का, भावादर्श प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९६।।
जो केशवचंद्र सेन-संग नौका, में ईश्वर गुणगान करैं ।
जो अवगुंठन में रूप छिपाकर, विमलदृष्टि का दान करैं ।
जो अतुल आत्मसंयम के द्वारा, अद्‌भुत कर्म अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९७।।
जो कमलाकान्त भक्त के सुमधुर, भक्ति-गीत का गान करैं ।
जो नौबतघर से ही ईश्वर-गुणगान-सुधारसपान करैं ।
जो मधुर-कंठ, संगीत कला से, जन-मन मुग्ध अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९८।।
जो भजनकीर्तन-गान-श्रवण से, ही समाधि-सुख प्राप्त करैं ।
जो सहज नाम-जप से ही मन को, दिव्य बोध से व्याप्त करैं ।
जो बाल्यकाल में खेल-खेल में, मन ध्यानस्थ अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९९।।
जो ईश्वर दिव्य भावरस का, आस्वादन विविध प्रकार करैं ।
जो ज्ञानदायिनी, सरस्वती, शरणागत का उद्धार करैं ।
जो भारतीय-हिन्दू होने में, गर्व विशेष प्रकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१००।।
जो विद्वानों-भक्तों के संग, सत् चर्चा बारम्बार करैं ।
जो भक्तिपूर्ण अपनत्व-रसायन, से आशा-संचार करैं ।
जो सच्ची आध्यात्मिक शिक्षा का, भावादर्श प्रचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१०१।।
जो शिक्षा और देव-पूजन से, नारी-प्रगति-प्रचार करैं ।
जो विनम्रता, मातृत्वभाव का, युगादर्श साकार करैं ।
जो सीता, सावित्री, गार्गी, का शुभगुणगान अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१०२।।
जो ईश्वर प्रेमाकर्षण-रस से, भक्त-चरित्र-सुधार करैं ।
जो माँ की सहज स्नेह-ममता, द्वारा दिव्यता-प्रसार करैं ।
जो निज उद्‌बोधन वाणी से ही, मनुष्यत्व-संचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।।१०३।।
जो श्रीनिवास शंखारी को, निज प्रथम भक्त स्वीकार करैं ।
जो योगानन्द को दीक्षा देकर, प्रथम शिष्य स्वीकार करैं ।
जो अजित सिंह खेतड़ी नृपति को, शिष्य रूप स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१०४।।
जो बाल्यकाल में माणिकराजा, के उद्यान-विहार करैं ।
जो सरल ग्राम्य बाला समान, कृषि-कर्म अनेक प्रकार करैं ।
जो खेल-कूद-व्यायाम-अध्ययन, में निज रुचि-विस्तार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१०५।।

मानव स्वयं अपना भाग्य-निर्माता

अनन्या पाढ़ी, जमशेदपुर

कभी इस देश में शान्ति के बिगुल बजाए जाते थे।
कभी इस देश में प्रेम के दीपक जलाए जाते थे।।
ऋषि-मुनि-ईसा-पैगम्बर इसी के लिए तो मरते थे।

मानवता के गंगाजल में राजा को धोते-मलते थे। किन्तु आज राजनीति तथा सामाजिक विचारधाराओं के नाम पर पंडित, मुल्ला लड़वाते हैं। राजनीति के शोलों पर मासूम जनता को जलाते हैं। आज स्पष्ट रूप से हमारे भारतवर्ष में विभिन्न मत-मतान्तर तथा विचारधाराओं में घोर पारस्परिक संघर्ष पाए जाते हैं। फलत: देश में बड़ी अनिश्चितता तथा बैचेनी फैली हुई है। श्रद्धा और बल, ये दोनों शब्द सुनने में तो अलग लगते हैं, परन्तु हैं एक ही सिक्के के दो पहलू। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, प्राचीन धर्म कहता है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। नया धर्म कहता है, जो आत्मविश्वासी नहीं है, वह नास्तिक है। अब बताइए, किस धर्म पर भरोसा करना चाहेंगे आप? शायद प्रश्न और उत्तर दोनों ही रोचक हैं। आत्मविश्वास छोड़कर यदि आप किसी अन्य चीज पर विश्वास करते हैं, तो वह विष जैसा है। आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता एवं आत्ममर्यादा ही सफलता की सीढ़ी है।

बल ही जीवन है और दुर्बलता ही मरण। बल ही अनन्त सुख है, चिरन्तन और शाश्वत जीवन है और भीरुता, कापुरुषता और संकीर्णता ही मृत्यु है। स्वामीजी कहते थे कि 'नहीं' शब्द मनुष्य के मुँह से कभी निकलना ही नहीं चाहिए। हममें अनन्त शक्ति है। हम मनुष्यों को सदा अपने लक्ष्य को पूरा करने का यथासम्भव प्रयास करना चाहिए। यदि जीवन में कभी असफल हो गए हों, तो निराश न होकर, अपनी त्रुटियों को सुधार कर, पुन: प्रयास करें, अवश्य सफल होंगे। आपमें प्रतिभा है, उसको अभिव्यक्त करना है। असफल होने पर लोग निराश हो जाते हैं, अपने आपको निरर्थक समझते हैं और कुछ लोग तो आत्महत्या करने की मूर्खता करते हैं। स्वामीजी ने इस सन्दर्भ में एक बार कहा था – मैंने गाय को कभी झूठ बोलते नहीं सुना, पर वह सदा गाय ही रहती है, कभी मनुष्य नहीं हो जाती।' अतएव यदि बार-बार असफल भी हो जाओ, तो भी कोई हानि नहीं, सहस्र बार इस आदर्श को हृदय में धारण करो और यदि सहस्र बार भी असफल हो जाओ, तो एक बार फिर प्रयत्न करो। स्वयं पर श्रद्धा और बल रखने से मनुष्य कुछ भी कर सकता है। अगर आप वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न, उत्साही हैं और दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करते हैं, तो आप जीवन में कुछ भी कर सकते हैं। अरे भाई ! यदि अदम्य साहस एवं दृढ़-शक्ति से एक चाय वाला देश का प्रधानमन्त्री बन सकता है, यदि एक माली का पुत्र देश का राष्ट्रपति बन सकता है, तो कुछ भी हो सकता है।

अब थोड़ा मानवजाति पर बातें करते हैं। कहते हैं कि मानव अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। स्वामीजी कहते हैं, मनुष्य तब तक मनुष्य कहा जा सकता है, जब तक वह प्रकृति के ऊपर उठने के लिए संघर्ष करता है। इस व्यायामशाला रूपी संसार में हम अपने आपको बलवान बनाने आते हैं। यह संसार तभी पवित्र एवं अच्छा हो सकता है, जब हम स्वयं पवित्र हों। वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। हमें अपने हाथों से हमारा भविष्य गढ़ना है। 'गतस्य शोचना नास्ति'। पवित्रता, धैर्य और अध्यवसाय, इन्हीं तीन गुणों से सफलता मिलती है और सर्वोत्तम है प्रेम।

साधारणत: मनुष्य अपने दोषों और भूलों को पड़ोसियों पर लादना चाहता है। यह न जमा, तो उन सबको ईश्वर के मत्थे मँढ़ना चाहता है और इसमें भी यदि सफल न हुआ, तो फिर भाग्य नामक एक 'भूत' की कल्पना करता है और उसी को उन सब के लिये उत्तरदायी बनाकर निश्चिन्त हो जाता है। पर प्रश्न यह है कि 'भाग्य' नामक यह वस्तु क्या है और कहाँ रहती है? हम जो कुछ बोते हैं, वही पाते

हैं। हम स्वयं अपने भाग्य के विधाता हैं। कहावत है – जो कापुरुष और मूर्ख है, वह कहता है – यह भाग्य है। लेकिन वह बलवान पुरुष है, जो खड़ा हो जाता है और कहता है 'मैं' अपने भाग्य का निर्माण करूँगा।

मैं आप सभी को तनिक हमारी मातृभूमि भारतवर्ष की यात्रा करवाना चाहूँगी। भारत पर प्रश्न उठता है। कौन-सा भारत? वह भारत, जो कभी सोने की चिड़िया कहलाता था या वह भारत जो प्राचीन काल से सभी उदात्तता, नीति और आध्यात्मिकता का संवाहक रहा है या वह भारत जिसमें ऋषिगण विचरण करते रहे हैं या वह भारत जिस भूमि में देवतुल्य मनुष्य अभी भी जीवित और जाग्रत हैं। क्या ऐसा भारत कभी मर सकता है? बताइए ना? क्या हमारे सपनों की भारतभूमि तहस–नहस हो जाएगी? स्वामीजी के शब्दों में 'एक बात पर विचार करके देखिए, मनुष्य नियमों को बनाता है या नियम मनुष्यों को बनाते हैं। मनुष्य रुपया पैदा करता है या कीर्ति और नाम मनुष्य पैदा करते हैं। मेरे मित्रो! पहले मनुष्य बनिये। आप देखेंगे कि बाकी चीजें स्वयं आपका स्वागत करेंगी। परस्पर के घृणित द्वेषभाव को छोड़िये और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस और सद्वीर्य का आश्रय लीजिये। सत्य, प्रेम तथा निष्कपटता को कोई भी बाधा नहीं पहुँचा सकता। स्वामीजी का मानना था कि भारतवर्ष का पुनरुत्थान होगा, पर शारीरिक शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति के द्वारा। वह उत्थान होगा विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् शान्ति और प्रेम की ध्वजा से।

इस देश में साध्य तो अनेक हैं, परन्तु साधन नहीं हैं, मस्तिष्क तो है, परन्तु हाथ नहीं है, हम लोगों के पास वेदान्त मत तो है, लेकिन उसे कार्य रूप में परिणत करने की क्षमता नहीं है। हमारे ग्रन्थों में सार्वभौम साम्यवाद का सिद्धान्त तो है, किन्तु व्यवहार में अभेदवृत्ति नहीं है। स्वामीजी का यह विश्वास था कि हतश्री, अभागे-निर्बुद्धि, पददलित-चिरक्षुधित, झगड़ालू और ईर्ष्यालु भारतवासियों को यदि कोई हृदय से प्रेम करने लगे, तो भारत पुनः जाग्रत हो जायेगा। वह पुनः सोने की चिड़िया कहलाएगा।

हम सभी भारतवासियों को उठना होगा, जागना होगा एवं बुराई का नाशकर अच्छाई की स्थापना करनी होगी। इस सम्बन्ध में मैं कविवर की चार पंक्तिया दोहराना चाहूँगी –

उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो सोवत है, सो खोवत है,
जो जागत है, सो पावत है।।
टुक नींद से अँखियाँ खोल जरा,
और अपने प्रभु से ध्यान लगा।
यह प्रीति करन की रीति नहीं,
प्रभु जागत है, तू सोवत है।।

मैंने यह माना कि चुनौतियाँ अपार हैं, परन्तु सम्भावनाएँ भीतर बरकरार हैं। आवश्यकता है, तो केवल श्रद्धा और बल की, भाग्यनिर्माताओं के आगे आने की। भारत भूमि को पुनः सोने की चिड़िया बनाकर दिखाने की, मानवता के आगे आने की। फिर देखिएगा, अजी फिर देखिएगा ! कितना सुन्दर खुशहाल एवं शान्तिमय यह जग है। अन्त में मैं इतना ही कहना चाहूँगी कि –

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गम पथस्तत् कवयो वदन्ति।।
चरैवेति चरैवेति चरैवेति
ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः !!! ○○○

कविता

यह देश हमारा भारत है

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

यह देश हमारा भारत है, जग का है अनुपम उपहार ।
इसकी संस्कृति में शामिल है, विश्व ज्ञान अनुपम भंडार।।
उत्तर में हिमशैल खड़ा है, भारत का बन पहरेदार।
दक्षिण में सागर लहराये, पाँव पखारे कर अति प्यार।।
नदियाँ अनुपम सुधा बाँटतीं, देतीं हैं जीवन आधार।
खेतों में लहराते पादप, करते खुशियों का इजहार।।
वृक्षों पर पक्षी का करलव, देते हिय आनन्द अपार।
फूल खिले हैं ऐसे मानो, करते प्रेम भाव विस्तार ।।
लोग यहाँ निर्मल मन वाले, पग-पग में मिलता है प्यार ।
भाई-बहन का प्रेम निराला, मिला नहीं कहीं संसार।।
ऐसा सुन्दर देश हमारा, प्रभु हर युग लेते अवतार ।
जीवन में आनन्द बहाते, लीला करते अपरम्पार।।

आत्मनिर्भर भारत : एक परिकल्पना

अशोक पाण्डेय, भुवनेश्वर, ओड़िसा

यह सच है कि २१वीं सदी भारत की अपनी सदी है। इसलिए समस्त भारतवासियों को अपने संकल्प 'आत्मनिर्भर भारत' को सबल करना होगा और उसके लिए सतत प्रयास करना होगा। पिछले लगभग दो वर्षों में हमने देखा कि वैश्विक महामारी कोरोना के संक्रमण से विश्व के लगभग ४२ लाख लोग संक्रमित हुए। उनमें से लगभग पौने दो लाख लोगों की मृत्यु भी हो गई। भारत के माननीय प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जी कहते हैं कि एक राष्ट्र के रूप में भारत आज एक महत्त्वपूर्ण मोड़ पर खड़ा है, क्योंकि भारत आपदा को अवसर में बदल रहा है। भारत जी-२० का नेतृत्व कर रहा है। भारत के लिये आत्मनिर्भर की अवधारणा अब बदल चुकी है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आज मानव केन्द्रित वैश्वीकरण की चर्चा जोरों पर है। भारत की संस्कृति तथा संस्कार; दोनों उस आत्मनिर्भर भारत की बात कर रहे हैं, जिसकी आत्मा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। भारत जब आत्मनिर्भर भारत की बात करता है, तो इसका तात्पर्य है आत्मनिर्भर भारत की, आत्मनिर्भर भारतीय समाज की, आत्मनिर्भर भारतीय परिवार की, आत्मनिर्भर भारत के सभी प्रदेशों की और कुल मिलाकर आत्मनिर्भर भारतीय राष्ट्र की, हिन्दुस्तान की। भारत के आत्मनिर्भर व्यवसाय की, कारोबार की, उद्योग की और स्वरोजगार की।

सभी जानते हैं कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है, जिसको सबसे पहले स्वावलम्बी तथा आत्मनिर्भर बनाना होगा। भारत के किसानों को आत्मनिर्भर और खुशहाल बनाना होगा। उनकी श्रमशक्ति को हनुमान जी की तरह ही उनकी प्रशंसा करके बढ़ानी होगी। वास्तविक भारतीयता यह मानती है कि एक भारतीय की सोच धरती को माँ मानने की है। सभी को सुखी, समृद्ध और खुशहाल बनाने और देखने की है। आज के सामान्य मानव के युग में एक भारतीय के कार्य का प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ रहा है। जब भारत खुले में शौच से बचता है, तो जगत् का चित्र ही बदल जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस तो भारत ने ही संसार को उपहार में दिया है, जिससे विश्व की मानवता तनावमुक्त हो रही है।

आज भारत के लगभग १४० करोड़ लोगों को आत्मनिर्भर भारत बनाने का यह संकल्प है – आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना को साकार करना। एक समय था, जब आत्मनिर्भर भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। कालान्तर में आज पुन: भारत विकास के पथ पर चल पड़ा है, आत्मनिर्भर भारत के मार्ग पर चल पड़ा है। क्योंकि आज भारत के पास नई तकनीक है, नई सोच है, नये संसाधन हैं, उत्कृष्ट सामर्थ्य है, सबसे बड़ी बात यह कि भारत लगभग ४० प्रतिशत युवाओं का विश्व का इकलौता देश है, जिसके पास दुनिया की सबसे अच्छी मेधाशक्ति है।

भारत अब बेस्ट प्रोडक्ट्स तैयार करता है। बेस्ट क्वालिटी प्रोडक्शन देता है। अपनी आपूर्ति को आधुनिक बनाकर उसे बढ़ा रहा है। आज प्रत्येक भारतीय के पास आत्मनिर्भर भारत की संकल्प शक्ति है। अगर हम भारतीय ठान लें, तो कोई भी लक्ष्य हमारे लिये असम्भव अथवा कठिन नहीं है। आज हमारे लिए न तो राह मुश्किल है, न ही चाह मुश्किल है। निर्विवाद रूप में यही भारत को आत्मनिर्भर भारत बनाएगा। भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी यह सदा कहते हैं कि भारत कुल पाँच पिलर पर खड़ा है – बेस्ट इकोनोमी, बेस्ट इंफ्रास्ट्रक्चर, बेस्ट सिस्टम, बेस्ट डेमोग्राफी तथा बेस्ट डिमांड। भारत की लोक कल्याणकारी सरकार की एक योजना – मेक इन इण्डिया निश्चित रूप से आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना को साकार करने में सहायक सिद्ध हो रही है। आज समस्त भारतवासियों को अपनी श्रमशक्ति, संघर्षशक्ति, संयमशक्ति और विभिन्न मेधाशक्ति को बढ़ाना होगा। हमारे भारतीय किसानों, पशुपालकों, गरीबों, मजदूरों, श्रमिकों,

प्रवासी मजदूरों, मछुआरों, स्थानीय मैन्युफैक्चर आदि को स्थानीय बाजारों में अपनी-अपनी सप्लाई चेन को बढ़ाना होगा। हमारे स्थानीय उत्पादों को गुणवत्ता के साथ अन्तर्राष्ट्रीय बनाना होगा। इसके लिए सभी भारतीय को लोकल से वोकल बनना होगा। देश के खादी और हैंडलूम उद्योगों के उत्पादन में तेजी से वृद्धि करनी होगी। भारतीय शाश्वत परम्परा यह मानती है कि हम स्वयं अच्छे बनें। हम अपनी अच्छाई का प्रयोग भारत के साथ-साथ सम्पूर्ण जगत् को अच्छा बनाने में लगाएँ। हमारी विदुर नीति भी यह कहती है कि अनुशासन में रहकर हम अच्छा बनें तथा सभी के लिये अच्छा करें। हमारी हिन्दू परम्परा एकान्त में आत्मसाधना करने और संसार में परोपकार करने को मान्यता देती है।

आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना को साकार करने में आप जो भी करें, नि:स्वार्थ भाव से करें। अपने अहंकार को त्यागकर करें। आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना को साकार करने के मार्ग में अहंकार की तृप्ति, कीर्ति और प्रसिद्धि जैसी स्वार्थी मनोवृत्ति से बचने की आवश्यकता है। इसलिए आपत्ति-विपत्ति में मानव-सेवा तथा लोकसेवा करनी चाहिए। सेवा का काम अच्छा होना चाहिए। अपनत्व, स्नेह और प्रेम के साथ होना चाहिए। यह आपके आचरण और व्यवहार में दिखना चाहिए। रामायण के अनुसार हनुमान जी के पास धृति, मति और द्राक्ष अर्थात् सावधानी तीनों दिव्य गुण थे, जिसके कारण सभी देवता उनकी प्रशंसा करते थे। आज आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना को साकार करने में प्रत्येक भारतीय के पास उसी प्रकार की धृति, मति तथा द्राक्ष होनी चाहिए। आज एक ओर जहाँ शासन, प्रशासन तथा राजनीति से जुड़े लोगों को स्वार्थमूलक न होकर समाजोन्मुख तथा देशोन्मुख होने की आवश्यकता है। आज आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना को साकार करने के लिये गो-पालन तथा जैविक खेती को भी बढ़ावा देना होगा।

अगर समस्त भारतीय चाहते हैं कि भारत आत्मनिर्भर भारत बने, तो सबसे पहले उन्हें कार्यसंस्कृति-सम्पन्न तथा दूरदर्शी बनना होगा। अपने कुल ६ निजी स्वार्थों से ऊपर उठना होगा और वे हैं – निद्रा, भय, क्रोध, तन्द्रा, आलस्य और दीर्घसूत्रता। यह भी आवश्यक है कि किसी के मन में इसके लिये किन्तु-परन्तु का भाव बिल्कुल ही नहीं होना चाहिए। अपनी-अपनी समझदारी देश के शक्तिबोध तथा सौन्दर्यबोध के लिए बदलनी होगी। भारत के लगभग १४० करोड़ लोग भारत माँ के अपने पुत्र हैं, ये भारत माँ के अपने बन्धु हैं और यदि हम सब इनको नई सदी में खुश देखना चाहते हैं, तो तन, मन, धन, त्याग, तपस्या, साधना और सेवा से आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना को साकार करने में लगना होगा। ○○○

कविता

रामकृष्ण वाणी अमर ज्योति

सूर्यनारायण झा, डालटनगंज, झारखण्ड

अखिल विश्व के वक्षस्थल पर, चेतन-चन्द्र की छाया ।
अनन्त रूप में एक ही ब्रह्म, स्वयं को ही दोहराया।।
जितने मत, उतने पंथ सभी, पर लक्ष्य एक ही ज्योति ।
तरंगित सागर में जैसे, एक रस की लहर अनोखी ।।
हृदयाकाश में भाव-सूर्य का, सहज उदय जब होता ।
भक्ति-बेलि के कुसुम-कुंज में, प्रेमसुधा का गान होता।।
व्याकुल चातक-चित्त पुकारे, 'हे करुणा-घन! बरसो आज'।
अमृत-मेघ बनकर उतरते, प्रभु भर देते जीवन-साज ।।
मन ही माया-मन्त्र जपता, मन ही मोक्ष-द्वार सजाता ।
मन-सरिता के शान्त तटों पर, आत्मा का कमल मुस्काता।।
'मैं' 'मेरा' के मेघ घिरें जब, ढँक जाए ज्ञानाकाश सारा ।
विवेक-वज्र तब चमक उठे, मिटे तमस का जाल दुबारा।।
संसार-सलिल में कमल-सा, निर्लेप रहो, न हो आकुल।
जल में रहकर भी अछूता, यही साधक का पथ निर्मल।।
नाम-सुमन की सुगन्ध बहे जब, साधु-संग की छाया में ।
चेतन-वन में जाग उठे तब, परमात्मा की माया में ।।
भक्ति-विटप के सघन कुंज में, प्रेम-पुष्प जब खिलते हैं ।
सेवा-सलिल से सिंचित होकर, जीवन-फल तब मिलते हैं।।
हरि हर कण में, कण-कण में हरि, यह अनुभूति अपार ।
दीन-दुखी के नयनों में ही, हो नारायण साक्षात्कार।।
करुणा-कुंज में रमे हुए जो, सेवा-पथ के पथिक महान ।
अन्तर में वे ही पाते, सच्चिदानन्द अमृत रस गान।।
ठाकुर अमृत वचन ज्योति, तम में दीपक बन जलती ।
जिसके दिव्यालोक में, जीवात्मा निर्भय हो चलती ।।
वचनामृत के विमल रत्न ये, अमर, दिव्य उपहार ।
जो धारण कर सके हृदय में, होता भव से पार।।

गुप्त रेडियो की आवाज – उषा मेहता

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो ! आज हम देशप्रेम के लिये समर्पित एक ऐसी साहसी लड़की की कहानी सुनने जा रहे हैं, जो अपने देशहित में निर्भय होकर काम करती रही। उसका नाम है 'उषा मेहता'। यह एक ऐसी शक्तिशाली लड़की थी, जिसने अपनी आवाज और एक गुप्त रेडियो द्वारा अंग्रेजी शासन की नींव हिला दी।

८ अगस्त, १९४२ की रात को गाँधी जी ने 'करो या मरो' का नारा दिया था। यह केवल एक आन्दोलन का प्रारम्भ नहीं था, बल्कि यह वह चिनगारी थी, जिसने लाखों दिलों को विद्रोह में बदल दिया। उसी भीड़ में एक २२ साल की लड़की भी खड़ी थी, जो दिखने में शान्त लग रही थी, लेकिन अंदर से ज्वालामुखी की तरह उबल रही थी। वह लड़की उषा मेहता थी, जो आगे चलकर अंग्रेजों के लिए सबसे बड़ा सिरदर्द बनी। जब आवाज को दबाया गया, तो उसने रास्ता बदल लिया। यह लड़ाई प्रत्येक जनता की लड़ाई बन चुकी थी। समाचार के पन्नों पर रोक लगा दी गई। जब सच को बोलने की अनुमति नहीं मिली, तो उषा मेहता ने इसका उत्तर ढूँढ़ लिया। मात्र एक सप्ताह में उषा मेहता ने अपने कुछ साथियों के साथ मिलकर एक गुप्त रेडियो स्टेशन खड़ा कर दिया।

यह केवल एक रेडियो नहीं था, यह तो आजादी की आवाज थी। यह रेडियो स्टेशन दिन में दो बार हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में प्रसारण करता था। बाद में इसे केवल सन्ध्या के समय तक सीमित कर दिया गया। जो सूचनाएँ लोग समाचार पत्रों में छापने में डरते थे, वे सभी सूचनाएं इस रेडियो स्टेशन से पूरे देश में गूँजती थीं। पुलिस उनके पीछे लगी रहती थी, लेकिन हर बार वे बच जाती थीं। यह एक खतरनाक खेल था, लेकिन वे डरी नहीं। नवम्बर, १९४२ में पुलिस ने मुम्बई में कई रेडियो दुकानों पर छापा मारा। धीरे-धीरे उन्हें इस गुप्त रेडियो के बारे में सूचना मिली। एक दिन ऐसा आया, जब पुलिस ने उस स्थान को घेर लिया, जहाँ अन्तिम प्रसारण चल रहा था। अन्तिम प्रसारण था, लेकिन हिम्मत नहीं टूटी। १२ नवम्बर, १९४२ उन्होंने 'हिन्दुस्तान हमारा' बजाया। उसके बाद खबरें सुनाईं और अन्त में 'वन्दे मातरम्' का उद्घोष किया। तभी दरवाजे पर जोर-जोर से खटखटाने की आवाज आने लगी। पुलिस बाहर खड़ी थी। दरवाजा तोड़ दिया गया। उपकरण जब्त कर लिए गए और उषा मेहता समेत कई लोगों को बन्दी बना लिया गया। जेल में उन्हें मानसिक पीड़ाएँ दी गईं। उन्हें लालच भी दिया गया कि यदि वे अपने साथियों के नाम बता दें, तो उन्हें विदेश पढ़ने भेज दिया जाएगा। लेकिन उन्होंने एक ही उत्तर दिया – 'नहीं'। चार साल बाद १९४६ में जब वे जेल से बाहर आईं, तो उन्हें गर्व था। उन्होंने आगे पढ़ाई की, पीएचडी की और मुम्बई के विल्सन कॉलेज में ३० साल तक अध्यापन किया। १९९८ में उन्हें देश के दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया और ११ अगस्त, २००० को इस वीरांगना की आवाज हमेशा के लिये शान्त हो गई।

आज हम आजादी का उत्सव मनाते हैं, किन्तु क्या हमें याद है कि इस आजादी की कीमत क्या थी? क्या हमें याद है वह लड़की जिसने बिना किसी हथियार के, मात्र अपनी आवाज से अंग्रेजों को चुनौती दी? बच्चो ! उषा मेहता केवल एक नाम नहीं है, यह एक संदेश है। आजादी की वह गूँज थी, जिसने बन्द पड़े सच को पूरे देश तक पहुँचाया। उनकी कहानी हमें याद दिलाती है कि सच्ची देशभक्ति शब्दों से नहीं, कर्मों से लिखी जाती है। जब समाचार पत्रों की आवाज दबा दी गई थी, जब सच्चाई को बन्दी बना लिया गया था, तब इस २२ साल की लड़की ने 'कांग्रेस रेडियो' के द्वारा पूरे देश में क्रान्ति की चिनगारी फैलाई। हर प्रसारण एक चुनौती थी, हर शब्द एक क्रान्ति थी। जब उनको बन्दी बनाया गया, तब भी उनकी आवाज नहीं टूटी। ऐसी वीरांगना को, ऐसी बुद्धिमती बेटी को हृदय से नमन! ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

पन्द्रहवाँ अध्याय (१५/५)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १५वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

वट-वृक्ष की तुलना मनुष्य के नाड़ी जाल से

भगवान ने इस अध्याय के प्रारम्भ में वट-वृक्ष की बातों को हमारे सामने रखते हुये कहा कि यह संसार एक अश्वत्थ वृक्ष के समान है। संसाररूपी अश्वत्थ वृक्ष में एक विलक्षणता यह है कि उसकी जड़ें ऊपर की ओर गई हुई हैं और शाखाएँ-प्रशाखाएँ नीचे की ओर फैली हैं। इस अध्याय में हमने यह समझने का प्रयास किया कि भगवान ने अश्वत्थ वृक्ष से इस संसार की तुलना क्यों की? एक उदाहरण ऐसा दिया जाता है कि यह जो मनुष्य के शरीर का नाड़ी-जाल है जिसको हम स्नायविक-जाल (Nervous System) भी कहते हैं, इसकी तुलना यदि अश्वत्थ वृक्ष से की जाये, संसार-वृक्ष से की जाये, तो मैं समझता हूँ कि बहुत-सी बातें सहज स्पष्ट हो जाती हैं। क्योंकि उसकी बहुत-सी बातें अश्वत्थ वृक्ष से मिलती-जुलती हैं। हम जानते हैं कि हमारे शरीर में सब जगह नाड़ियाँ फैली हैं। सूई की नोक बराबर जगह भी शरीर में नाड़ी से रिक्त नहीं है। जब आप एक सूई या पिन लेकर शरीर में कहीं भी कुरेदते हैं, वह संवेदना आपको मालूम पड़ती है। यहाँ तक कि एक छोटी-सी चींटी जिसका वजन कुछ भी नहीं होता, वह भी यदि हमारे शरीर पर कहीं चलने लगे, तो तत्क्षण उसकी उपस्थिति का हमें बोध हो जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि शरीर में कहीं कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ संवेदना प्रदान करनेवाली नाड़ी न हो। नाड़ी का अर्थ ही होता है कि जिसके द्वारा प्रवाह लाया जाये। स्नायु शब्द भी इसी अर्थ को प्रतिध्वनित करता है।

यदि हम अपनी शरीर-रचना को लें, तो इसके भीतर यह जो नाड़ी जाल है, इसकी जड़ें मस्तिष्क के अंदर में हैं। जो शरीरशास्त्र का ज्ञाता है, वह भी यही कहेगा कि ब्रेन के भीतर में हमारे नाड़ी-जाल का केन्द्र अवस्थित है। इसका क्या तात्पर्य हुआ? यही कि नाड़ी जाल का जो मूल है, वह ऊपर में अवस्थित है और नाड़ियाँ ऊपर से नीचे की ओर गई हुई हैं। छन्दांसि यस्य पर्णानि – छन्द जिसकी पर्ण-रचना हैं, छन्द हमने योग को कहा था। योग का तात्पर्य ज्ञान होता है। यह जो ज्ञान है, यह वृक्ष के पर्ण या पत्तों के समान है। जैसे पत्ते किसी वृक्ष की शोभा होते हैं, उसी प्रकार यह जो विषयों का ज्ञान है, वह नाड़ियों की शोभा है। नाड़ी हमें विषयों का ज्ञान करा देती है और जिस समय ऐसा नहीं होता, तो हम कहते हैं कि यह नाड़ी खराब हो गई है। जैसे आँख की जो नाड़ी है, वह यदि खराब हो जाए, तो फिर हमें दृश्य नहीं दिखाई देते हैं। यह जो विषयों का ज्ञान है, वह सौंदर्य है नाड़ी का, नाड़ी की शोभा इसमें है कि वह ज्ञान कराती रहे।

मन पर नियंत्रण के लिए संवेदना-प्रवाह की प्रक्रिया का ज्ञान आवश्यक

जो व्यक्ति यह जान लेता है कि किस प्रकार नाड़ी से संवेदना का प्रवाह आता है, मस्तिष्क में स्थित केन्द्र में जाता है और वहाँ जाने के पश्चात् यह मस्तिष्क किस प्रकार की प्रतिक्रिया करता है और हमें ज्ञान होता है। जो ज्ञान की पूरी प्रक्रिया को समझने में समर्थ है, वही वस्तुतः ज्ञान का ज्ञाता है। ऐसा हम कह सकते हैं कि उसे ज्ञान का बोध हुआ है।

अभी हमें ज्ञान तो होता है, पर ज्ञान की जो संवेदना है, उस संवेदना को हम देख नहीं सकते। इसलिए नहीं देख सकते कि हमारी जो बुद्धि है, वह अभी इस दृष्टि से मोटी है। जिस समय हमारी बुद्धि सूक्ष्म हो जाती है, चिन्तन सूक्ष्म हो जाता है, उस समय नाड़ी के द्वारा जब संवेदना का प्रवाह छोड़ा जाता है, उस प्रवाह को योगी देखने में समर्थ होता है। मान लीजिए हमने किसी वस्तु को छू लिया, हम कहते हैं कि यह वस्तु हमें ठण्ढी लगती है। हमें ऐसा लगता है, हमने जैसे ही छुआ, हमें उसी समय ठण्ढ का ज्ञान हो गया। यदि योग के द्वारा हम अपनी बुद्धि को सूक्ष्म बना लें, तब हमें मालूम पड़ेगा कि जो हमने छुआ है, उस छूने से संवेदना नाड़ी के द्वारा मस्तिष्क स्थित केन्द्र में पहुँची और फिर वहाँ से उसकी प्रतिक्रिया आई और जब प्रतिक्रिया आती है, तब हमें ज्ञान होता है। इतनी सारी प्रतिक्रिया का ज्ञान हम योग के द्वारा अपनी बुद्धि को सूक्ष्म बनाकर कर लेते हैं। इसीलिए यहाँ पर कहा गया – य: स वेद – जो इस प्रक्रिया को जान लेता है, उसी को ठीक-ठीक ज्ञान का बोध होता है। जब हम संसार में लिपटे होते हैं, तब इस सूक्ष्म प्रक्रिया को पकड़ नहीं पाते। इसीलिए जब दुख की संवेदना आती है, तो हम मुह्यमान हो जाते हैं और सुख की संवेदना आती है, तो हम चंचल हो जाते हैं। योगी को दुख की संवेदना जिस प्रकार उद्वेलित नहीं कर पाती, उसी प्रकार सुख की संवेदना से भी वह चंचल नहीं हो पाता। वह इन द्वन्द्वात्मक भावनाओं; सुख-दुख और राग-द्वेष से ऊपर रहता है।

आज हम द्वन्द्वात्मक भावनाओं से घिर जाते हैं, क्यों? क्योंकि इस दुख की संवेदना के आने का, मस्तिष्क से प्रतिक्रिया के निकलने का हमें पता ही नहीं चलता। हम मुह्यमान हो जाते हैं। पर यदि हम अपने बुद्धियन्त्र को प्रक्रिया को पकड़ने लायक सूक्ष्म बना लें, तो यह सुख-दुख की प्रक्रिया भी पकड़ में आ जाती है। इस पन्द्रहवें अध्याय में यही बताया गया। हमने दूसरी दृष्टि से इसको पढ़ा था। एक संसार-वृक्ष अश्वत्थ की तुलना देते हुए हमने इस अध्याय का चिन्तन किया। अब थोड़ी सी कल्पना इसकी भी करें कि आपके अपने ही भीतर में ऐसा अश्वत्थ वृक्ष है, यह नाड़ी का जाल, जिसकी जड़ें, ऊपर की ओर मस्तिष्क में स्थित हैं और जिसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ नीचे की ओर फैली हुई हैं। हम प्रतिक्षण नई सुख-संवेदना प्राप्त करना चाहते हैं।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा: विषयप्रवाला: – गुण से ये प्रवृद्ध होती हैं। तीनों गुण मानो इस नाड़ी के जाल का संपोषण करते हैं। विषयप्रवाला: – उसकी जो कोपलें निकलती हैं, वे विषयों की कोपलें हैं। इसका तात्पर्य है कि हम नाड़ी-जाल को एक ऐसी संवेदना देना चाहते हैं, जो सुखकर संवेदना हो, इसीलिए तरह-तरह के भोग के विषय हम इन्द्रियों के समक्ष ला करके रखना चाहते हैं, ताकि यह हमारा नाड़ी-जाल तरह-तरह की सुख की संवेदना पाएं और हम सुख-भोग कर सकें। एक सुख यदि पुराना हो जाता है, तो हमारे लिए वह सुख नहीं रहता और कभी-कभी तो दुख का कारण हो जाता है। इसीलिए मनुष्य स्वाद बदलना चाहता है। वही-वही बातें मुझे सुख प्रदान नहीं करतीं। यह जो बदलने का स्वभाव है, यह स्वभाव आकर कोपलों के बीच में चलता है, ऊपर नई विषयरूपी कोपलें निकलती रहती हैं।

हम सुख संवेदनाओं से परिचालित होने लगते हैं

अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके – कहते हैं कि ये कोपलें कर्म के द्वारा जाकर मनुष्य लोक में अनुबन्धित कर देती हैं। इसका तात्पर्य है कि नाड़ियों के जाल में जो संवेदना आती है, प्रतिक्रिया आती है, वह प्रतिक्रिया हमें बुद्धि से प्राप्त होती है। उस प्रतिक्रिया से संस्कार होता है और यह संस्कार ही जाकर हमारे कर्म संस्कारों से जुड़ जाता है, उन संस्कारों द्वारा पुन: हम परिचालित होने लगते हैं। इसी को कर्म का अनुबन्धन कहा। मनुष्य लोक में हम मानो कर्म से अनुबन्धित हैं, कर्म संस्कार से उत्पन्न होते हैं, संस्कारों को हमने फिर से उत्पन्न किया। वहाँ पर कहते हैं कि यदि हमने इन संस्कारों को नहीं काटा, तो ये बढ़ेंगे। इसलिये 'असंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा' कहा गया अर्थात् इस वृक्ष की जड़ों को काटने का केवल एक ही उपाय है और वह है असंगता का उपाय। असंगता का दृढ़ अस्त्र लेकर जब हम जड़ों को काट देते हैं, तब नया अश्वत्थ फिर से नहीं होता। यह जो नाड़ी-जाल हमें संवेदनाएँ पहुँचाता है, केवल ज्ञान के द्वारा ही हम इस संवेदना से अपनी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। जिस ज्ञान की चर्चा हमने अभी की – अभी मुझे ज्ञान नहीं है, इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि एकदम संवेदना मेरे भीतर आई। एक उदाहरण लें। झील या नदी

के पानी की सतह पर वायु का बुलबुला दिखाई देता है। वह सतह पर नहीं बनता, वह तो नीचे से ही बन कर आता है। आप नीचे तलहटी में जाएँगे, तो देखेंगे कि जल के भीतर हवा बंद हो जाती है और तब बुलबुला उठना शुरू होता है। जब वह पानी के सतह पर आया, तब आपको बुलबुले के रूप में दिखाई देता है। यदि आप चाहते हैं कि बुलबुले का रूप दिखाई ही न दे, तो आपको वहीं पर ही तलहटी में बुलबुले को नष्ट कर देना पड़ेगा। अब आप देखेंगे कि ऊपर में बुलबुला आता ही नहीं। ठीक इसी प्रकार ये जो संवेदनाएँ प्राप्त होती हैं, तो संवेदनाएँ जहाँ पर शुरू होती हैं, वहीं पर यदि आप इनको पकड़ लें, तो संवेदनाओं का प्रभाव आप पर नहीं होगा। इसी को कहते हैं द्वन्द्वों से मुक्त होना – द्वन्द्व आपको किसी प्रकार मुह्यमान न कर सकें। पन्द्रहवें अध्याय का जो सार सर्वस्व है, वह यहाँ पर बताया गया कि निर्द्वन्द्व होकर कैसे हम जीवन यापन कर सकें, उपाय क्या है?

संवेदनाओं पर नियन्त्रण के अभ्यास से संसारचक्र से मुक्ति

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् – वह मनुष्य द्वन्द्वों से विमुक्त होकर उस अव्यय पद का अधिकारी बन जाता है। मनुष्य एकदम से आपे से बाहर हो जाता है। क्यों? क्योंकि उसे पता ही नहीं चलता कि उसे कब क्रोध आ गया, कब घृणा हुई। अब क्रोध को जीतने का उपाय क्या बताया गया है? कहा गया कि मनुष्य थोड़ा-थोड़ा चिन्तन करे कि क्रोध कैसे उत्पन्न होता है। यदि किसी योगी को आप किसी कारण से गाली दे देते हैं, तो वह क्या करेगा? यह जो गाली का शब्द है, उसके कर्ण रंध्र में प्रवेश करता है और वहाँ आघात देता है। तब जिसे हम कर्णेन्द्रिय कहते हैं, वह नाड़ी गाली की संवेदना को मस्तिष्क स्थित केन्द्र में ले जाती है। वह जो योगी है, जिसने द्वन्द्वों को सहने का थोड़ा अभ्यास किया है, वह देखता है कि नाड़ी इस शब्द को बुद्धि के पास ले जाती है। बुद्धिरूपी केन्द्र में जाने के बाद यह निश्चय हुआ कि यह गाली का शब्द है, यह तुम्हारे लिए अपमानजनक है। यदि मैं पकड़ न पाऊँ, तो तुरन्त प्रतिक्रिया होती है, पर योगी इसको पकड़ लेता है। ठीक है, यह मेरे लिए अपमानजनक है, पर शब्द ही तो है। तो शब्द से फिर मैं अपने आप को विचलित क्यों कर लूँ? ऐसा ज्ञान का उद्वेग जहाँ पर होता है, वह इस प्रतिक्रिया को बुद्धि में ही नष्ट कर देता है। तो वह जो गाली आपने दी, उस गाली की प्रतिक्रिया उसके जीवन में दिखाई नहीं देती है। ऐसे द्वन्द्व से जब वह विमुक्त हो जाता है, तो वह उस अव्यय पद का अधिकारी बन जाता है। अव्यय पद कैसा है? उसकी चर्चा हमने विस्तार से की है।

भगवान ने इस अध्याय को 'इति गुह्यतमं शास्त्रं' कहा है। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि यह पन्द्रहवाँ अध्याय गुह्यतम शास्त्र है। मानो यह समूची गीता का सार है, ऐसा माना जा सकता है। सोलहवें और सत्रहवें अध्यायों को हम प्रक्षिप्त कह सकते हैं। अठारहवें अध्याय को हम उपसंहार कह सकते हैं और इसीलिए इस पन्द्रहवें अध्याय में भगवान ने ज्ञान का सारसर्वस्व रख दिया। भगवान ने सारी बातें इस पन्द्रहवें अध्याय के बीस श्लोकों में रख दीं। इसको कहा गया, पुरुषोत्तम योग। अभी इसके पहले तक पुरुषोत्तम योग नहीं कहा था। इसी अध्याय का नाम है, पुरुषोत्तम योग। यहाँ पर पुरुषोत्तम शब्द का उपयोग भगवान ने किया है। उन्होंने इस अध्याय को पुरुषोत्तम योग कह करके पुकारा है, इसलिए हम कह सकते हैं कि यह अध्याय बहुत महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यह बहुत छोटा-सा है, पर इसकी महत्ता बहुत अधिक है। यदि आध्यात्मिक दृष्टि से इसकी थोड़ी सी गवेषणा करें, चिन्तन करें, तो इसमें हमें एक नया अर्थ दिखाई देता है, जो हमारे जीवन के लिए बहुत लाभकर है। **(क्रमशः)**

प्रतिदिन अन्ततः कुछ समय के लिए भी तो बैठकर जप-ध्यान किया करो। समयाभाव? कि आन्तरिकता का अभाव? सब कार्य करने के लिए समय मिलता है या समय निकाल लेते हो, वह चाहे हजार तुच्छ कार्य ही क्यों न हो, और एक-आध घण्टा जप-ध्यान के लिए समय नहीं मिलता! प्यास के लिए जैसे पानी का, भूख के लिए जैसे भोजन का, बचने के लिए जैसे वायु का प्रयोजन है, वैसे ही पारमार्थिक वस्तुलाभ के लिए जप-ध्यान, प्रार्थना-क्रियादि की विशेष आवश्यकता है। उसके लिए अभावबोध जगाना होगा, प्रतिदिन की क्रियाओं के अभ्यास से वह क्रमशः उपस्थित होगा, उससे शक्तिसंचय होगा।

– स्वामी विरजानन्द जी महाराज

साधुओं के पावन प्रसंग (९२)

स्वामी सर्वगतानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी सर्वगतानन्द (१९१२-२००९)

स्वामी सर्वगतानन्द तीन 'प' युक्त संन्यासी थे। पवित्र, प्रेमिक और पण्डित। रामकृष्ण संघ के प्रति उनकी निष्ठा, संन्यासी-ब्रह्मचारियों के प्रति स्नेह, भक्तों के प्रति उनका प्रेम तथा सहानुभूति सबको मुग्ध करता था। किसी के द्वारा उनसे सहायता माँगने या किसी के संकट में पड़ने पर महाराज उसकी सहायता के लिए आगे आते थे। ऐसे उदारहृदय, दयालु और दानी संन्यासी अत्यन्त दुर्लभ हैं।

स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज का जन्म २७ नवम्बर, १९१२ ई. को आन्ध्रप्रदेश में हुआ था। छात्रावस्था में ही वे स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़ गये थे। वे महात्मा गाँधी के अनुयायी थे। १९३४ ई. में स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज से मुम्बई में उनकी दीक्षा हुई। स्वामी सर्वगतानन्द जी ने अपने गुरु से रामकृष्ण संघ में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। उनके गुरुदेव ने उनको हजार मील दूर पैदल जाकर कनखल सेवाश्रम में सेवा करने के लिए कहा। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करके कई महीना पैदल चलकर वे ७ फरवरी, १९३५ ई. को कनखल सेवाश्रम पहुँचे। वहाँ पर वे स्वामी विवेकानन्द के शिष्य स्वामी कल्याणानन्द जी से मिले। कल्याणानन्द ने उनसे कहा, "तुम संन्यासी होना चाहते हो? देखो, एक है जो मन्दिर में जाकर पूजा, प्रार्थना करता है तथा भगवान को नैवेद्य चढ़ाता हैं। एक अन्य कोई है, जो अस्पताल में रोगियों की सेवा करता है, उनको पथ्य और दवा देता है तथा उनसे दो मीठी बातें करता हैं। यदि तुम ऐसा सोचते हो कि मन्दिर में भगवान की पूजा तथा अस्पताल में रोगियों की सेवा दोनों एक ही है, तभी तुम इस केन्द्र में सम्मिलित हो सकते हो।' यह स्वामी विवेकानन्द की व्यावहारिक वेदान्त की शिक्षा है। 'कर्म और पूजा' दोनों अलग-अलग नहीं हैं। स्वामी कल्याणानन्द जी महाराज के इन शब्दों ने सर्वगतानन्दजी के मन को अतीव प्रभावित किया था तथा वे अपने जीवन में उस आदर्श का पालन करते थे और इसको बारम्बार बताते थे, 'कल्याण महाराज के उन शब्दों ने मेरे अन्तर्मन को बहुत प्रभावित किया था।'

स्वामी सर्वगतानन्द ब्रह्मचारी अवस्था में कनखल में स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के पास बंगला तथा शास्त्र अध्ययन करते थे। महाराज का बंगला उच्चारण दोषरहित नहीं था, किन्तु वह सरल तथा आकर्षक था। संन्यासियों के प्रति उनकी सेवा-भावना को देखते हुए स्वामी कल्याणानन्द जी ने उनको १९३७ में कनखल अस्पताल का प्रभारी नियुक्त किया। वे अत्यन्त दक्ष तथा विवेकी थे। नौ वर्ष कनखल सेवाश्रम में व्यतीत करने के पश्चात् १९४३ ई. में वे स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज के सहायक के रूप में कराँची गये। भारत की स्वतन्त्रता तथा विभाजन के बाद स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज ने विशाखापत्तनम् केन्द्र का कार्यभार ग्रहण किया। १९५४ ई. में वे स्वामी अखिलानन्द के सहायक के रूप में बोस्टन, अमेरिका गये। १९६२ ई. में स्वामी अखिलानन्द जी महाराज के शरीर-त्याग के बाद वे बोस्टन और प्रोविडेन्स रोड आइलैण्ड केन्द्र के अध्यक्ष हुए। स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज ने ९७ वर्ष की आयु में ३ मई, २००९ को बोस्टन में अपने इस नश्वर-शरीर का त्याग किया।

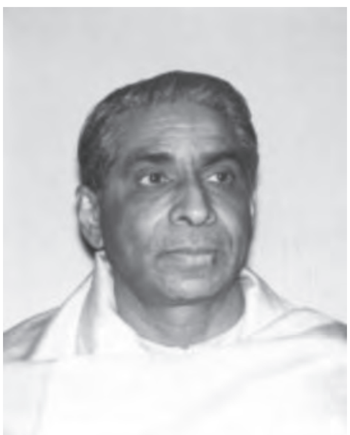

स्मरण होता है कि १९७१ ई. में अद्वैत आश्रम में मैंने उनका प्रथम दर्शन किया था। जब मैं हॉलीवुड तथा सेंट लुईस में रहता था, तब कई बार बोस्टन तथा प्रोविडेन्स गया था। स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज बोस्टन के निकट मार्शफिल्ड रिट्रीट में ग्रीष्म ऋतु व्यतीत करते थे। १९७२ ई. में जब स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज नेत्र ऑपरेशन हेतु बोस्टन आये, तब सर्वगतानन्दजी ने उनकी चिकित्सा तथा सेवा की सारी व्यवस्था की थी। उस समय मैं हॉलीवुड से बोस्टन गम्भीरानन्दजी महाराज का दर्शन करने गया था। तत्पश्चात् मैं पूर्वी तट अवस्थित स्वामी विवेकानन्द से सम्बन्धित स्थलों जैसे ब्रीजी मीडोज तथा थाउजैण्ड आईलैण्ड पार्क का दर्शन करने गया। स्वामी सर्वगतानन्द जी ने स्वयं एलिजाबेथ कोपलैण्ड को मुझे दर्शन कराने हेतु नियुक्त किया था।

१९७६ ई. में स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज के शरीर-त्याग के पश्चात् मैं स्वामी पवित्रानन्द और स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज के साथ मार्शफिल्ड रिट्रीट में कई दिनों तक था। मैंने उन वरिष्ठ संन्यासियों से कई पुरानी स्मृतियाँ सुनीं। रामकृष्ण संघ के इतिहास में इन संन्यासियों के भीषण संघर्षों को नहीं लिखा गया है। स्वामी सर्वगतानन्द जी ने मुझे बताया कि कैसे उन्होंने बोस्टन केन्द्र का प्रभार लिया। १९६२ ई. में स्वामी अखिलानन्द जी महाराज के मृत्यूपरान्त मिसेज वॉर्सेस्टर ने आश्रम पर कब्जा कर लिया। मिसेज वॉर्सेस्टर स्वामी अखिलानन्द जी की सचिव एवं सेविका थीं। सर्वगतानन्दजी प्रोविडेन्स में रहते थे। जब स्वामी सर्वगतानन्दजी ने मुख्यालय, बेलूड़ मठ को सम्पूर्ण परिस्थितियों से अवगत कराया, तब बेलूड़ मठ ने न्यासियों द्वारा पारित आधिकारिक पत्र भेजा, जिसमें स्वामी सर्वगतानन्द को बोस्टन और प्रोविडेन्स केन्द्र का प्रभारी नियुक्त किया गया था। पत्र के साथ, स्वामी सर्वगतानन्द इटैलो पेलिनी तथा लॉकस्मिथ को लेकर बोस्टन मन्दिर गये। मिसेज वॉर्सेस्टर ऊपर में थीं और उन्होंने पुलिस को फोन करके बुलाया। जब पुलिस आयी, तब सर्वगतानन्दजी ने अपने सम्पूर्ण मन-प्राण से श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना आरम्भ कर दी। पुलिस वाला एक आयरिश कैथोलिक था तथा संन्यासियों के प्रति श्रद्धा रखता था। उसने महाराज से सारी घटनाएँ सुनीं तथा बेलूड़ मठ से पारित आधिकारिक पत्र को देखा। उसने मिस्टर पेलिनी से जानना चाहा कि क्या वे वास्तव में संन्यासी हैं। तब उसने मिसेज वॉर्सेस्टर को कहा कि आप तत्काल अपना कपड़ा-लत्ता बाँध लीजिए। पुलिस ने मिसेज वॉर्सेस्टर को आश्रम से बाहर कर दिया। स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज ने तत्काल आश्रम में अपना ताला लगा दिया। इस प्रकार उन्होंने बोस्टन आश्रम का प्रभार ग्रहण किया। यह ऐतिहासिक सत्य है।

स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण संघ के लिए बहुत कार्य किया है। १९६२ ई. से १९९८ ई. तक उन्होंने बोस्टन तथा प्रोविडेन्स; इन दोनों केन्द्रों के सभी कार्य किये थे। वे प्रात:काल बोस्टन में प्रवचन करते थे तथा सन्ध्या समय प्रोविडेन्स में। इसके अतिरिक्त, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी तथा मैसाचुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेकनोलॉजी (MIT) में वे नियमित रूप से कक्षाएँ लेते थे, जहाँ पर वे आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में थे। इन दोनों सम्मानित संस्थाओं के अधिकारीगण स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज के प्रति अत्यन्त श्रद्धा करते थे। महाराज का सबसे प्रेम, उदार दृष्टिकोण, गम्भीर शास्त्रज्ञान, दृढ़ व्यावहारिक ज्ञान सबको आकर्षित करता था। वे बोस्टन तथा प्रोविडेन्स; इन दोनों केन्द्रों में बच्चों हेतु भजन तथा रविवासरीय कक्षाएँ आरम्भ कर गये हैं। वे कहा करते थे, ''यदि इन बच्चों को श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के विषय में सुनाया जाता है, तो ये ही बच्चे भविष्य में रामकृष्ण संघ के भक्त होंगे।''

११ अगस्त, १९७८ को मार्शफिल्ड में सर्वगतानन्दजी ने श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी तारकेश्वरानन्द के विषय में बताया, ''जब वे श्रीमाँ के पास आये थे, तब वे मात्र एक विद्यार्थी थे। लेकिन एक बड़ी भारी भूल करने के कारण उनको अतीव ग्लानि का अनुभव हुआ। अपने आप को श्रीमाँ की कृपा के अयोग्य मानते हुए, जीवन में अन्तिम बार श्रीमाँ को प्रणाम करने गये। श्रीमाँ सारदा ने उनका कॉलर पकड़ लिया और कहा, 'जब भी तुम्हारा मन बहुत खराब होगा, तब मेरा स्मरण करना।' बाद में वे साधु हो गये। वे कनखल में रहते तथा परवर्ती काल में स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश में वास करते थे। एक दिन ऋषिकेश में रहते समय वे उषाकाल में ही शौचादि क्रिया हेतु नदी की ओर गये थे। दूर से हिरण समझ कर स्वर्गाश्रम के पहरेदार ने उनके ऊपर गोली चला दी। वे बुरी तरह घायल हो गये। जब पहरेदार नजदीक आया, तब वे उसको पहचान गये।

उन्होंने पहरेदार से कहा कि तुम यहाँ से जल्दी से जल्दी भाग जाओ, नहीं तो अगल-बगल के लोग आ जायेंगे और तुमको मार सकते हैं। बाद में उनको कनखल सेवाश्रम में ले जाया गया। जब पुलिस ने उनसे पूछताछ की, तब महाराज ने कहा, 'जिसने मुझ पर गोली चलायी, मैं उस व्यक्ति को जानता हूँ; लेकिन मैं उसका नाम आपको नहीं बताऊँगा।' अन्त में उनकी मृत्यु हो गयी। स्वामी तारकेश्वरानन्द जी महाराज श्रीमाँ सारदा देवी के सच्चे शिष्य थे, वे किसी में दोष नहीं देखते थे।''

मार्शफिल्ड रिट्रीट में स्वामी सर्वगतानन्द जी महाराज सन्ध्या जप-ध्यान के समय टेलिफोन का सम्पर्क काट देते थे। जब मैंने उनसे पूछा कि यदि कोई अतिआवश्यक कार्य हेतु फोन करता है, तो उस समय क्या होगा? उन्होंने उत्तर दिया, ''भाई, यदि एक घण्टा मैं फोन नहीं उठाऊँगा, तो संसार का विनाश नहीं हो जायेगा।'' भक्तगण ये जानते थे कि सर्वगतानन्दजी जप-ध्यान के समय फोन नहीं उठायेंगे। महाराज इस विषय में बहुत निष्ठावान थे।

स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज सर्वगतानन्दजी को बहुत प्रेम करते थे। प्रेमेशानन्दजी महाराज ने उनसे कहा था, ''देखो, अपना सेवा-कार्य करो और बाद में अपने भीतर डूब जाओ। गपशप तथा व्यर्थ के बकवास और राजनीति में मत फँसना एवं किसी का दोष नहीं देखना।''

रात्रि-प्रसाद के पश्चात् हमारे बीच अनेक बातें होतीं। एक दिन सर्वगतानन्दजी ने कहा, ''देखो, हमारा मूलमन्त्र है, तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो !'' सन्ध्या-आरती के पश्चात् महाराज 'जय जय रामकृष्ण भुवनमंगल, जय माता श्यामासुता अति निरमल...' भजन गाते थे।

स्वामी सर्वगतानन्द जी के पास कुछ मौलिक-विचार थे। वे मुझे लिखने के लिए बहुत प्रोत्साहित करते थे। एक दिन उन्होंने कहा, ''भाई, एक पुस्तक लिखो 'Lives and Teachings of the Great Teachers of the World.' उसमें जगत् के महापुरुषों की जीवनी तथा उपदेश रहेंगे। वहाँ पर कोई 'वाद' नहीं रहेगा। केवल उस प्रकार की पुस्तकें ही धर्मों के आपसी विद्वेष को समाप्त कर सकती हैं। जहाँ कहीं मत और हठधर्मिता रहेगी, वहाँ पर लड़ाई-झगड़ा होता ही रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति ही अपने धर्म को महान मानता है।'' तत्पश्चात् उन्होंने एक कहानी कही, ''हार्वर्ड डिविनिटि स्कूल के एक प्रोफेसर ने अपने विद्यार्थियों से पूछा, 'धर्म के नाम पर इतना खून-खराबा होता है। इसका समाधान क्या है?' एक मुसलमान विद्यार्थी खड़ा हुआ और कहा, 'समाधान बहुत कठिन नहीं है। इस पृथ्वी के सभी लोग मुसलमान हो जायें।' प्रोफेसर ने कहा, 'अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईराक, सीरिया तथा मिस्र आपस में लड़ रहे हैं। तुम्हारा समाधान तार्किक नहीं है।' तब एक ईसाई विद्यार्थी खड़ा हुआ और कहा, 'संसार के सभी लोग ईसाई हो जायें, तो फिर खून-खराबा नहीं होगा।' प्रोफेसर ने कहा, 'देखो, आयरलैण्ड में कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट्स के बीच कितनी अधिक लड़ाई चल रही है। अनेक व्यक्ति मर रहे हैं। तुम्हारा समाधान भी पहले के जैसा मान्य नहीं है।' ''

स्वामी सर्वगतानन्द जी विद्यार्थियों को भगवद्गीता के सार्वजनीन आध्यात्मिक सिद्धान्त, उपनिषद् और स्वामी विवेकानन्द के चार योग उपहार स्वरूप दिया करते थे। महाराज विद्यार्थियों तथा प्रोफेसरों के बीच बहुत लोकप्रिय थे।

सर्वगतानन्द जी महाराज अति विनम्र तथा हास्यपूर्ण संन्यासी थे। उन्होंने स्वामी कल्याणानन्द जी महाराज के ऊपर एक छोटी पुस्तक 'तुम परमहंस हो जाओगे' लिखी। एक सच्चे संन्यासी को अपना जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए, वह इस पुस्तक से सीख सकता है। एक बार मैंने उनसे कहा, ''महाराज, आपने इस पुस्तक में लिखा है कि कनखल सेवाश्रम के बगीचा में एक साँड़ सब्जियों को खा रहा था। स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने सबको शान्त रहने के लिए कहा था। लेकिन स्वामी ब्रह्मानन्द जी की स्मृति में स्वामी सारदेशानन्द ने लिखा है कि आश्रम में एक जंगली हाथी आया था।'' महाराज ने कहा कि, ''भाई, मैंने जो सुना था, वही लिखा है।'' **(क्रमशः)**

समाचार और सूचनाएँ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में स्वर्ण जयन्ती मनाई गयी

२ फरवरी, २०२६ को **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर** में श्रीरामकृष्ण-मंदिर-स्थापना की स्वर्ण जयन्ती मनाई गयी। इस उपलक्ष्य में आश्रम में प्रात:काल से दिनभर विविध कार्यक्रम आयोजित हुए। प्रात:काल ५ बजे मंदिर में मंगल आरती हुई। ६ बजे छत्तीसगढ़-मध्यप्रदेश-महाराष्ट्र से आए हुए सैकड़ों सन्तों और भक्तों द्वारा कीर्तन-नृत्य करते हुए मंदिर की प्रदक्षिणा की गई, जिसे उषा कीर्तन कहते हैं। उसके बाद समवेत भक्तों द्वारा मंदिर में भजन किया गया। ७ बजे से १२ बजे तक मंदिर में श्रीरामकृष्ण देव की विशेष पूजा की गई, हवन हुआ। सभी भक्तों ने पुष्पांजलि दी। डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने मंदिर के इतिहास पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा कि

श्रीरामकृष्ण देव का यह सार्वजनीन मंदिर सभी वर्गों और सभी धर्मों के लिये सदैव खुला रहता है, यहाँ सभी लोग आकर शान्ति पाते हैं। यह छत्तीसगढ़ में अनुपम और विशेष है। बाद में भण्डारा हुआ, जिसमें २५ संन्सासियों और ४५० भक्तों ने प्रसाद पाया। शाम को मंदिर में आरती और भजन हुये। विदित हो कि श्रीरामकृष्ण मंदिर की स्थापना २ फरवरी, १९७६ को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन परमाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज के कर-कमलों से हुई थी। इस महोत्सव में लगभग ५०० लोग सम्मिलित हुए।

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण विवेकानन्द भाव-प्रचार युवा परिषद का वार्षिक सम्मेलन रायपुर में हुआ

१३ अप्रैल, २०२६ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार युवा परिषद का पहला वार्षिक सम्मेलन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में सोल्लास सम्पन्न हुआ। संन्यासियों द्वारा श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी के चित्र पर पुष्पार्पण और दीप प्रज्वलन के साथ कार्यक्रम प्रात: ९.३० बजे प्रारम्भ हुआ। स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने उद्बोधन संगीत प्रस्तुत किया। युवा परिषद के संयोजक संजय कुमार यादव ने 'मेरा भारत शाश्वत भारत' नामक पुस्तक से चयनित अंशों का पाठ किया। संयुक्त संयोजक तापस दत्त ने सुभाषचन्द्र बोस, रबीन्द्रनाथ टैगोर, गाँधीजी और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के कथनों का पाठ किया। रामकृष्ण मिशन युवा परिषद केन्द्रीय समिति के प्रतिनिधि स्वामी वेदपुरुषानन्द जी ने भूमिका प्रस्तुत की। युवा परिषद के मुख्य सलाहकार स्वामी व्याप्तानन्द जी ने युवा विभाग एवं युवा परिषद की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् युवा परिषद के अध्यक्ष स्वामी नित्यज्ञानानन्द जी ने 'सदस्य आश्रमों के युवा विभाग युवा परिषद की नींव हैं तथा आश्रमों के अध्यक्ष एवं सचिवों की युवा विभाग के प्रति उत्तरदायित्व' नामक विषय पर व्याख्यान दिया। युवा परिषद के उपाध्यक्ष कान्त दूबे जी ने अपने भाषण में 'युवा विभाग एवं युवा परिषद का संविधान तथा मध्य प्रदेश-छत्तीसगढ़ परिषद में उनकी वर्तमान स्थिति' को स्पष्ट किया। संयोजक संजय कुमार यादव ने 'युवा परिषद एवं युवा विभाग के कर्तव्य और परस्पर सम्बन्ध' विषय के बारे में बताया। स्वामी वेदपुरुषानन्द जी ने युवा परिषद के संयोजक एवं युवा संचालकों के कर्तव्य पर प्रकाश डाला। उन्होंने युवा विभाग के लिये पाठचक्र एवं ध्यान पर भी चर्चा की। तदनन्तर आश्रमों के युवा विभाग से प्राप्त रिपोर्ट पर चर्चा हुई। उसके बाद स्वामी नित्यज्ञानानन्द, स्वामी व्याप्तानन्द और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने समस्याओं पर चर्चा की। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी योगस्थानन्द जी ने सबको धन्यवाद दिया। रामकृष्ण शरणम् से सभा सुसम्पन्न हुई।